भारतीय ब्रह्माण्ड विद्या

INDIAN COSMOLOGY

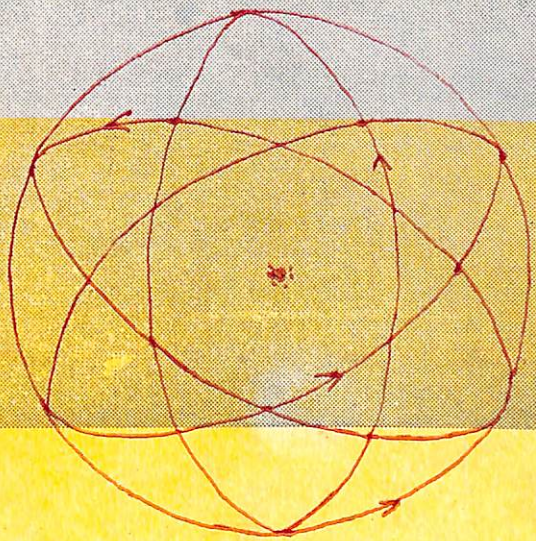

किशोर चन्द्र चौबे

भारतीय ब्रह्माण्ड विद्या

INDIAN COSMOLOGY

किशोर चन्द्र चौबे

ऐरावत प्रकाशन

30 जून 1988 [redacted]

मूल्य :- हिन्दी संस्करण 160=00 रु०
अंग्रेजी संस्करण सहित 250=00 रु०

© सर्वाधिकार लेखक के पक्ष में सुरक्षित ।

प्रकाशक :—

ऐरावत प्रकाशन
230/9C मण्डावली फाजलपुर
दिल्ली–110092

मुद्रक :-

ईगल प्रिंटर्स
M.B. 185 मास्टर ब्लाक,शकरपुर
दिल्ली-110092

ISBN-81-85337-01-2

प्रकाशक की ओर से

भारतीय ब्रह्माण्ड विद्या (Indian Cosmology) शीर्षक से यह पुस्तक भारतीय साहित्य में ही नहीं बल्कि विश्व साहित्य में पहली एवं बेजोड़ है। इस पुस्तक में प्राचीन भारतीय विज्ञान को नवीन ढंग से अभिव्यक्त किया गया है।

ब्रह्माण्ड की संरचना का विवेचन, ब्रह्माण्डीय तरंगों का जीवन में प्रभाव, विश्व की प्रमुख भाषाओं की वर्णमालाओं का रंगों में अनुवाद तथा कविताओं को रंगीन चित्रों द्वारा पढ़ने का ढंग जो इस पुस्तक में दिया गया है वह सर्वथा नवीन एवं मौलिक है।

यह पुस्तक भावी विज्ञान के लिए सोचने और करने के अनेकों स्थल प्रदान करती है। लेखक का प्रयास अत्यधिक प्रशंसनीय है। इस पुस्तक को प्रकाशित कर पाठकों को देते हुए हमें अत्यधिक हर्ष हो रहा है।

प्रकाशक

समर्पण

पूजनीय पिता श्री भोला दत्त चौबे जी को

एवं

सातवीं शताब्दि में ढौंढिया खोड़ा अवध से जाकर कुमाऊँ के राजाओं के यहाँ चौतारा ब्राह्मण (राजगुरु, राज मंत्री, राज पुरोहित, राज पण्डित) के रूप में पूजे गये परम पूजनीय वृद्ध प्रपितामह श्री सुधानिधि चौबे जी तक समस्त पूर्वजों को।

भूमिका

लगभग दस वर्ष पूर्व होमियोपैथी की constitutional medicine theory को पढ़ने के बाद मेरे मन में अचानक constitutional particle theory of universe, ब्रह्माण्ड संरचना में सूक्ष्म कण सिद्धान्त का विचार आया और इस पर मैंने कुछ लेख लिखे। जिन्हें मेरे परम मित्र श्री आनन्द जी दीक्षित उप सम्पादक हिन्दी हिन्दुस्तान ने पढ़ा और उन्होंने मुझे Martinus Cosmology नामक पुस्तक देकर इस ओर कार्य करने की प्रेरणा दी। उनके इस प्रेरणात्मक मार्ग दर्शन के परिणाम स्वरूप मैं इस विषय पर काम करने लगा और इसे मैंने अपनी पत्नी श्रीमती पुष्पा चौबे एवं दोनों पुत्रों पंकज व योगेश तथा अपनी साली श्रीमती मंजु भट्ट के सहयोग से सन 1984 में पूरा किया। इसके पूर्ण होने पर मैंने इसे अपने योग्य मित्रों एवं रिस्तेदारों को पढ़ाया। जिनमें प्रमुख श्री मुनीश जोशी निदेशक पुरातत्व विभाग नई दिल्ली, श्री डा० कैलाश चन्द्र पपनै पत्रकार दैनिक हिन्दुस्तान नई दिल्ली, श्रीमती एवं श्री लीलाधर शर्मा व्याख्याता हिन्दी दयाल सिंह एवं माता सुन्दरी कालेज दिल्ली, श्री भूप सिंह बिष्ट हिन्दी सहायक सलाहकार जीवन बीमा निगम दिल्ली, श्री जयपाल सिंह ढ़ाका पी.जी.टी. हिन्दी, श्री राम प्रकाश भारद्वाज पी.जी.टी. संस्कृत, श्री मुकेश गुप्ता टी.जी.टी. विज्ञान, रा.उ.वि. लक्ष्मी नगर, श्री जे. एस. बजेली सीनियर सुपरवाईजर UBSPD दिल्ली हैं। इन्होंने इसके लिए सुधारात्मक समालोचनायें दीं। तथा सुझाव दिया कि मैं इस पुस्तक को अनुदान हेतु शिक्षा मंत्रालय भेजूं मैंने उनके परामर्श पर इस पुस्तक के प्रारूप को 24-4-1985 को शिक्षा मंत्रालय के संस्कृत विभाग को भेजा जहाँ से उन्होंने अपने पत्रांक No. F. 9-85 SKT.–2, भारत सरकार के द्वारा मुझे पुस्तक को प्रकाशन के उपरान्त Purchase Scheme में भेजने उत्तर दिया। इस पुस्तक की मुक्त कण्ठ से प्रसंशा मेरे पूजनीय मामा श्री जगदीश प्रसाद पुनेठा जी ने की। जो मेरे गुरु भी रहे हैं, उनके ये शब्द "मुझे तुमसे यही आशा थी" मेरा हर कदम पर उत्साह बढ़ाते हैं।

नियति के नियम के अनुसार यह पुस्तक ऐरावत प्रकाशन की अध्यक्षा श्रीमती मीना पाण्डे जी के सहयोग से अब प्रकाशित हो रही

है। इसके प्रकाशन में ईगल प्रिंटर्स के मालिक श्री एस० अरुण कुमार व कर्मचारी श्री के० मोहन, श्री रवि कुमार, श्री वेद प्रकाश श्रीवास्तव का बहुत स्नेह रहा है।

इस तरह परमात्मा की कृपा एवं पूजनीय जनों माता पिता, सास ससुर एवं गुरुजनों के आशीर्वाद से यह कार्य इस रूप में पूर्ण हुआ है। जिसके लिए उपरोक्त इन सभी लोगों का मैं अत्यधिक आभारी हूँ तथा भविष्य में इस पुस्तक के पढ़ने वाले पाठकों का भी मैं आभारी रहूँगा जो मेरे इस कार्य को और अधिक सत्य शिव और सुन्दर बनाने का सुझाव देंगे।

किशोर चन्द्र चौबे

विषय सूची

पृष्ठ सं०

विषय प्रवेश

1. ब्रह्माण्ड, वर्ण, ध्वनि और ब्रह्माण्ड विद्या 1

2. ब्रह्माण्ड का कर्ता 4

3. भारतीय चिन्तन में ब्रह्माण्ड विद्या 8

1. वेदों में 8
2. ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थों में 22
3. उपनिषदों में 24
4. ब्रह्म सूत्र में 30
5. गायत्री दर्शन में 32
6. त्रिक दर्शन में 34
7. विराट दर्शन में 38
8. यज्ञ दर्शन में 40
9. पंच तत्त्व दर्शन में 44
10. बहुदेव दर्शन में 47
11. निरुक्त में 50
12. शिक्षा दर्शन में 52
13. सूर्य सिद्धान्त में 55
14. ज्योतिष दर्शन में 58
15. योग दर्शन में 68
16. तंत्र दर्शन में 73
17. चिकित्सा दर्शन में 84
18. गीता दर्शन में 88
19. पुराण दर्शन में 89

4. आधुनिक तथा वैदिक कणवाद 95
1. आधुनिक कणवाद 95
2. वैदिक कणवाद 97
5. ब्रह्माण्डीय रसायन 103
6. ब्रह्म कण और जीवन 105
7. अभिव्यक्तियों का ब्रह्माण्डीय रूप 108
1. विभिन्न ध्वनियों के ब्रह्माण्डीय रंग 108
2. अन्य अभिव्यक्तियों का ब्रह्माण्डीय रूप 125
8. ब्रह्माण्डीय प्रभाव में मनस्थिति 129
9. आभात्मक शब्द कोश रचना विधि 133
10. आभात्मक शब्द कोश का प्रारूप 135
11. अनुक्रमणिका 135

संक्षिप्त नामावली

अ.	अथर्व, अग्नि	आ.	आपस्तम्ब, आत्म
ई.	ईशावास्य	उ.	उपनिषद
ए.	एतरेय	क.	कठोपनिषद
का.	कात्यायन	के.	केनोपनिषद
कै.	कैवल्योपनिषद	ग.	गरुण, गर्भ
गो.	गोपथ	गौ.	गौतम
च.	चरक	छा.	छान्दोग्य
जै.	जैमिनी	तं.	तंत्र
तै.	तैत्तिरीय	द.	दर्शन, दक्ष
ना.	नारायण, नारद, नाद,	न्या.	न्याय
प.	पद्म	पा.	पाराशर, पाणिनीय
प्र.	प्रश्न, प्रदीप	पु.	पुराण
ब.	बज्र	बृ.	बृहत, बृहस्पति
ब्र.	ब्रह्म	ब्रा.	ब्राह्मण
भ.	भविष्य	म.	मनु
भी.	मीमांसा	य.	यम, यजुर्वेद
यजु.	यजुर्वेद	याज्ञ.	याज्ञवल्क्य
यो.	योग	लि.	लिंग
व.	वसिष्ठ	वि.	विष्णु
वे.	वेद	व्या.	व्यास
श.	शतपथ	शा.	शातातप, शास्त्र
शि.	शिव	सा.	सामवेद, सांख्य
स्व.	स्वरोदय	ह.	हठ, हयग्रीव

शुद्धि पत्र

पृ० संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
क	वाड्गमय, वांगमय	वाड्.मय
1.	सृष्टा	स्रष्टा
8.	उर्द, उर्ध, उर्ध्व	ऊर्ध्व
21.	तत्व	तत्त्व
49	ज्योयों	ज्योतियों
67	शज्द	शब्द
77	इसलि	इसलिए
111	अकुहविर्सजन्याम् कष्ठः।	अकुहविर्सजनीयानामु कण्ठः
चित्र संख्या 1	उपरी	ऊपरी

विषय प्रवेश

प्रस्तुत विषय में ब्रह्माण्ड का कर्ता वर्ण और उसके द्वारा निर्मित चर, अचर दृश्य, अदृश्य, पद, रूप, रूपातीत एवं निरंजन स्वरूप में समस्त सृष्टि और उसका लय एवं सृष्टि और लय क्रम में रूपों और प्रति रूपों के स्वरुपों का विवेचन किया गया है।

वर्ण का तात्पर्य सर्वत्र व्याप्त सूक्ष्म ब्रह्म सत्ता है। जिससे सम्पूर्ण सृष्टि आवेष्ठित है। जो सदैव गतिमान है। वर्ण विषय पर निर्वचन करते हुऐ निरुक्तकार यास्क मुनि ने कहा है वर्णो वृणोतेः। वर्ण वह है जिसने अपने स्वरूप से सबको ढक लिया है। व्याकरण शास्त्र के अनुसार वर्ण वृञ् धातु से बना शब्द है जिसका तात्पर्य आश्रय देना है। अस्तु वर्ण वह है जो सबको आश्रय देता है और जिस पर सब आश्रित हैं। वर्ण का तात्पर्य अक्षर भी है। कभी क्षय न होने वाली अर्थात ब्रह्मात्मक स्थिति अक्षर है। इस अक्षर या वर्ण का नाम रंग भी है। रंग का तात्पर्य लिप्त होना है। जिसमें सब लिप्त हैं वह रंग है। इस तरह रंग, वर्ण, अक्षर, ब्रह्म, सब उस अनन्त निर्माणक के पर्याय ही हैं।

भारतीय वांगमय में उस अनन्त को मूल वर्ण कहा गया है जिसने मात्रा प्रतिमात्रा पुनः मात्रा करके समस्त की त्रिधा रूप में रचना की है।

मात्रा मात्रा प्रति मात्रा कुर्मात् अथ तुरीय ईश्वरग्रासः स स्वराट् स्वयं ईश्वरः। नृ० पू० ता० उपनिषद्।

इस एकात्मक वर्ण का नाम 'उ' है। जिसे महेश्वर कहते हैं। ऋग्वेद की ये ऋचायें इस बात को और स्पष्ट करती हैं। उद् उ ज्योतिः अमृता विश्व जन्यम्। ऋ. 7-76-1। यह 'उ' नामक ज्योति अमृत है और विश्व की जनक है। उद् उ स्त्रियाणाम् अस्रजं निदानं। ऋ. वे. 6-32-2। इस उ ने ही अनन्त का निर्माण किया है। न. उ वा एतत् म्रियसे न रिष्यति। ऋ. वे. 1-162। यह उ कभी भी क्षीण नहीं होता और न समाप्त होता है। इस उ की गति उच्चरण और इसके गति क्रम से निर्मित सृष्टि ऊर्जा या उर्विया कहलाती है।

यह उ ऊँकार से अहंकार तक नीले वर्ण से लाल वर्ण तक तीन क्रम, सात परिधि, और एक्कीस समिधों में फैला हुआ माना गया है।

नील लोहितं भवति कृत्याशक्ति व्यज्यते। सप्तास्य आसन परिधयः त्रिसप्त समिधः देवा यत् यज्ञं तन्वाना अवन्धनं पुरुषः पशुम्।

ऋ. वे. 10-7-85-28

इस उ. का तीन, सात, एक्कीस का क्रम वर्ण माला कहलाती है। जिसका नाम मरुत भी है। इनकी संख्या 49 से 54 मानी गयी है। मरुत का तात्पर्य 'उ' के सूक्ष्म स्वरूपों से है। जो सृष्टि के मूलभूत कण हैं और देव कहलाते हैं। इन्ही से क्षेत्रज्ञ का उद्गम हुआ है। क्षेत्रज्ञ का तात्पर्य आत्म स्वरूप से है।

महर्षि पाणिनि के अनुसार सृष्टि हेतु नृत्य करते हुए महेश्वर उ ने चौदह बार वर्ण क्रम की रचना की जिसको शिव सूत्र जाल या चौदह भुवन कहते हैं। ये सूत्र निम्न प्रकार हैं।

1. अइउण्। 2. ऋलृक्। 3. एओङ्। 4. ऐऔच्।
5. हयवरट्। 6. लण्। 7. ञमङणनम्। 8. झभञ्।
9. घढधष्। 10. जबगडदश्। 11. खफछठथचटतव्।
12. कपय्। 13. शषसर्। 14. हल्।

य सूत्र अल् नाम से भी जाने जाते हैं। जिसका तात्पर्य ब्रह्म है।

मानव शरीर से ध्वनि के रूप में वर्ण किस तरह प्रकट होते हैं। इस विषय में महर्षि पाणिनि ने कहा है कि जब मानव मन इस सृष्टि से आत्मबोध हेतु सम्पर्क करता है। तब वह शरीर में जलकर मरुतों को उत्प्रेरित करता है और ये उत्प्रेरित मरुत मुखादि अवयवों द्वारा ध्वनि के रुप में ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, अनुस्वार और विसर्ग में बदलकर उच्चारित होते हैं।

आत्मा बुद्धया समेत्यर्थान मनो युङ्गते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्॥
सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः।
वर्णान् जनयते तेषां विभागः पञ्चधामतः॥

ये उच्चारित वर्ण अपनी पंचम अवस्था में रूपान्तरित होकर अगले वर्ण में विसर्ग हो जाते हैं। ये वर्ण अति सूक्ष्म हैं। विखण्डन से परे हैं। भारतीय दर्शन में इन्हें अच्छेद्य अभेद्य कहा गया है। इन वर्णात्मक कणों को आज का वैज्ञानिक भी प्रकाश कणों के बाद की अच्छेद्यावस्था मानता है। ये वर्ण कण व्यापक है इस लिए विभु कहलाते हैं। इनका सूक्ष्म रूप शुभ्र या नीला है और गुरुतम रूप धूसर या कृष्ण है। इनका सूक्ष्म रूप ही सबकी अन्तिम अवस्था है। और स्थूल रूप सृष्टि का कर्ता है। विभिन्न ध्वनियों के द्वारा वर्णात्मक सत्ता का स्थूल रूप ही हमें बोध होता है। इस स्थूल के द्वारा ही उस सूक्ष्म से हमारा संपर्क होता है। हमारा सम्पूर्ण वांगमय इन वर्णों पर ही आधारित है।

हमारी कौन सी ध्वनि से किस वर्ण या रंग का उद्दीपन या जागरण या वर्ण स्वरूपीकरण होता है। उसका वर्णन वेद ग्रन्थों से लेकर पुराणादि ग्रन्थों तक किस रूप में हुआ है उसका विवेचन भी यहाँ किया गया है। इसके साथ ही उन दार्शनिक तत्थ्यों का भी वर्णन है जिससे वर्णों के रंगों का ज्ञान होता है उदाहरण के रूप में विराट् दर्शन में मूल चार वर्णों अ, इ उ और व्यंजनात्मक म् को ब्राह्मण वैश्य और शूद्र रूप में प्रकट करते हुए कहा गया है कि ब्राह्मण शुभ्र वर्ण का है। वैश्य पीत वर्ण का है। क्षत्रिय रक्त वर्ण का है। और शूद्र कृष्ण वर्ण का है।

इसी तरह पंच तत्त्व दर्शन में क्षिति जल पावक, गगन समीर के वर्णात्मक रूपों का विवेचन है। ऐसे ही ज्योतिष में, तंत्र में, मंत्र में, योग में, धर्म में, कर्म में, वर्णों की सूक्ष्म सत्ता का विवेचन जो भारतीय चिन्तन में किया गया है उसका यहाँ उल्लेख है।

ब्रह्माण्ड के कर्ता की सत्ता के निर्धारण के उपरान्त विभिन्न दर्शनों व विचारों में उल्लिखित वर्णात्मक स्थिति को निष्कर्ष रूप में लेकर भारतीय वर्ण माला का पाणिनीय व्याकरण के आधार पर रंगात्मक अनुवाद किया गया है। भारतीय वर्ण माला की ध्वनियाँ ही सार्व भौमिक हैं इस धरती में ही नहीं इससे परे ब्रह्माण्ड में कहीं भी ध्वनि होगी वह भारतीय वर्ण माला के अनुरूप ही होगी इस तत्थ्य

को प्रकट करते हुए भारतीय वर्णमाला के साथ साथ विश्व में बोली जाने वाली मुख्य भाषाओं की मूल ध्वनियों का रंगात्मक स्वरूप उनके उच्चारण के आधार पर किया गया है।

ध्वनियों के रंगों को प्रकट करने के बाद मानवीय क्रियाओं और चेष्टाओं पर प्रकाश डालने के लिए उनके द्वारा उच्चारित शब्दों काव्य स्थलों मंत्रों आभायीय परिवृतों को रंगात्मक रूप में चित्रित किया गया है। यह मानते हुए कि वर्ण सर्वाधिक सूक्ष्म है। सर्वत्र गतिमान है। सबकी अन्तरात्मा है। अभिव्यक्ति के रूप में सबके अन्तःकरण को प्रकट करता है। स्रष्टा के रूप में सबको बनाता है। संहारक के रूप में सबको अपने में समा लेता है। यह सबका जनक है अतः सर्वत्र इसके गुण सूत्र हैं। इससे सब प्रभावित हैं। सम्पूर्ण जगत इस वर्ण क्रम के फल स्वरूप ही पैदा हुआ है और उसमें वर्ण के किसी खास स्वरूप का प्रभाव है एवं उसके विनाश में उसका प्रतिरोधक कार्यशील है। इस बात को ध्यान में रखकर यहाँ व्यक्ति को स्व निर्माणक वर्ण जानने उसको पुष्ट करने उसके द्वारा आत्मोत्थान और जनकल्याण की प्रेरणा दी गयी है।

वर्तमान वैज्ञानिक कण वाद से प्राचीन वैदिक कण वाद की तुलना करके भारतीय दर्शन में वर्णित, वर्णात्मक विज्ञान को उजागर करने के प्रयास के साथ साथ भारतीय दर्शन की उन भ्रान्तियों का निराकरण भी किया गया है जो लोगों के मन में अज्ञानवतावश व्याप्त हैं। उदाहरण स्वरूप तंत्र शास्त्र में पंच मकार (मद्य, मास, मीन, मुद्रा, और मैथुन,) ज्योतिष शास्त्र की ग्रहात्मक स्थिति आदि। इसके अलावा यहाँ सार्वभौमिक एकता, अखण्ड ऊर्जावाद और धर्म सामंजस्य का भी संदेश दिया गया है।

प्राचीन भारती एकात्मक ऊर्जावाद, वर्णों के अधोक्रम, और उर्ध क्रम से बनने वाले चुम्बकीय व गुरुत्व क्षेत्र एवं वर्णों का सहज व विष्फोटक क्रम को देते हुए आभात्मक शब्द कोश की रचना विधि सर्वमान्य सिद्धान्तों के अनुसार यहाँ दी गयी है। पाठकों की बोध गम्यता के लिए शब्दों के प्राचीन अर्थों की व्यवस्था भी साथ साथ दी गयी है।

प्राचीन भारतीय ब्रह्माण्डीय विज्ञान जो यत्र तत्र बिखरे रूप में उपलब्ध है को एक स्थान पर लाने का प्रयास इसमें किया गया है तथा विश्व में प्रथम बार मंत्रों छन्दों काव्यों एवं ध्वनि संकेतों को रंगों में अनुवाद करने का सफल प्रयोग भी यहाँ किया गया है। रंगों को शब्दों में और शब्दों को रंगों में अनुवादित कर उन्हें पढ़ने का प्रयास इसकी नवीनता है। आशा है कि पाठक भारतीय विज्ञान की इस दिशा से लाभान्वित होंगे।

—●—

ब्रह्माण्ड, वर्ण, ध्वनि और ब्रह्माण्ड विद्या

ब्रह्म और उसका विस्तृत स्वरूप जिसमें ब्रह्म स्वयं एवं उसके द्वारा बनाये गये समस्त चर अचर स्थूल, सूक्ष्म, पिण्ड, पद, रूप रूपातीत जो भी हैं, उन सबका सामूहिक रूप तथा उनकी समस्त क्रियायें उसके परिणाम स्वरूप प्रतिक्रियायें और उनका फलितार्थ सबका सब ब्रह्माण्ड है। जिसका एक सिरा सृष्टा है और दूसरा सिरा सृष्टि जो एक दूसरे से नियंत्रित एवं संचालित होकर अनवरत कार्य कर रहे हैं। जिसमें जीवन, मरण, पुनर्जीवन, चिन्तन, मनन, कर्म प्रतिकर्म जैसी समस्त क्रियायें लगातार चल रही हैं। यह विशाल ब्रह्माण्ड जिसमें पदार्थों के सूक्ष्मतम कणों से लेकर विशालकाय पिण्ड हैं। आकाश गंगायें हैं। काल विवर हैं। अनन्त प्रकाश वर्ष की दूरियां हैं। वहीं इन सबमें व्याप्त एवं उनसे अलग इनका निर्माता भी है। जिसको पाना सर्वथा असम्भव है क्योंकि उसको पाने के लिए उसकी सारी इस रचना को ऊर्जा में बदलना पड़ेगा। अर्थात् इस सृष्टि को ब्रह्मकुण्ड में जल जाना पड़ेगा। ब्रह्माण्ड में व्याप्त इस सूक्ष्मातिसूक्ष्म सत्ता का नाम वर्ण है जिसको स्वर कहते हैं। अक्षर* कहते हैं।

एतत् हि एवाक्षरं ब्रह्म
एतत् हि एवाक्षरं परम्।
एतत् हि एवाक्षरं ज्ञात्वा
यो यदिक्ष्यति तस्य तत्॥ क. उ. 1-2-16

यह अक्षर ब्रह्म परम सूक्ष्म है और अन्तर्गत स्वभाव का है। यह ही भूत वर्तमान भविष्य का निर्माता है और उसको परिवर्तित करने वाला है। इस सृष्टि में जो रूपान्तरित हो गये हैं अर्थात जो मर गये हैं। जो जीवित हैं। जो जन्म लेंगे उन सबके कार्य कलापों को लयात्मक रूप से निर्धारित करने वाला यही अक्षर है।

---

* तथा अक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्। प्रश्नोपनिषद 1-17

अक्षरं ब्रह्म परमं
स्वभावो अध्यात्म उच्यते ।
भूत भावोद्भव करो
विसर्गः कर्म संज्ञितः ।। —गीता 8-3

यह अक्षर ब्रह्म ही हमारी आत्मा है। हमारा मन है। यह ही हमारी चिन्तन और विज्ञान की समस्त सामग्री है। यह अर्थ है और उस अर्थ को प्रकट करने वाला शब्द है। इस ब्रह्माण्ड में वह सर्वत्र है। वह सब कुछ है। इस ब्रह्माण्ड के बाद भी यदि कुछ है तो वह भी केवल ब्रह्म है।

ब्रह्म चिद् ब्रह्म मनो ब्रह्म विज्ञान वस्तु च
ब्रह्म अर्थो ब्रह्म शब्दःच ब्रह्म सर्वत्र एव च ।
ब्रह्म सर्वमिदं विश्वम् विस्वातीतं च तत्परम्
वस्तु तस्तु जगन्नास्ति सर्व ब्रह्मैव केवलम् ।। —यो. व.

यह अक्षर वर्ण कहलाता है। निरुक्तकार के अनुसार सबको वरण या धारण करनेवाले को वर्ण कहते हैं। वर्णो वृर्णोतेः सूत्र उन्होंने दिया है। श्वेताश्वतरोपनिषद में कहा गया है कि यह सम्पूर्ण सृष्टि वर्णात्मक है और उसका कर्ता वर्णों से परे सूक्ष्म वर्ण है। वह सबको बनाता है और सबको अपने में समेट लेता है इस तरह उसका यह कार्य अद्वितीय है।

य एको वर्णो बहुधा शक्ति योगात्
वर्णान् अनेकान् निहितार्थो दधाति ।
विश्वैव चान्ते विश्वमादो च देवः
सनो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तुः । श्वेता. उ.

वर्ण का तात्पर्य रंग भी है। हरित वर्णः हिरण्य वर्णः आदि वैदिक प्रयोग में वर्ण रंग वाचक भी है। जो सबको अपने से अनुरंजित कर लेता है वह रंग है। स्वर वर्ण रंग ये अनेक नाम उस एक ही निर्माणक के हैं।

भारतीय वाङ्.गमय में ब्रह्म के विभिन्न वर्णात्मक स्वरूपों की अभिव्यक्ति का नाम वर्णमाला है। जिसको ध्वनि क्रम भी कहते हैं। ध्वनि के अनन्त स्वरुप होते हुए भी सूक्ष्म और स्थूल रूप में इनकी

संख्या 49 मानी गई है। ये स्वर और व्यंजन रूप में पाई जाती हैं। जिनमें स्वरों की संख्या 16 और व्यंजनों की संख्या 33 है। इनको मरूत भी कहते हैं क्योंकि ये अन्तरिक्ष में तीव्र गति शील हैं। महद् द्रवन्ति इति मरूतः। मरूतः तीव्र गामिनो भवन्ति। निरूक्त

इन मरुतों द्वारा बनी वर्णमाला का प्रत्येक वर्ण ब्रह्म के निश्चित वर्ण क्रम के स्वरूप को प्रकट करता है इसलिए वर्णमाला को स्थूल और सूक्ष्मता की दृष्टि से वर्गीकृत किया गया है। सुने जाने योग्य वर्ण श्रव्य हैं। इन्ही को जब उच्चारित किया जाता है तो उच्य कहलाते हैं और लिखे जाने पर लिप्य तथा सोचे जाने पर ये चिन्त्य हैं। ये परा और अपरा रूप में सर्वत्र व्याप्त हैं। इसमें अपरा के अन्तर्गत समस्त ब्रह्माण्डीय स्वरूप कर्म प्रतिकर्म जिनमें ज्ञान विज्ञान की समस्त शाखायें आती है और परा में इन सबके अक्षरात्मक रूप का विवेचन है।

तत्र अपरा ऋग् वेदो यजुर्वेदः साम वेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणम् निरुक्तम् छन्दो ज्योतिषम् इति। अथ परा तद् अक्षरम् अधिगम्यते।

मु. उ. 1-1-5

इसी बात को ध्यान में रखते हुए योग वसिष्ठ में कहा गया है कि हमें लगन के साथ वर्णमाला का चिन्तन करना चाहिए। यह वर्णमाला जो 'अ' से प्रारम्भ होकर 'ह' में अन्त होती है वह सतत और स्वतः स्पुटित है उसका गति क्रम 'अ' से 'उ, तक है। यह ही आत्म परक ज्ञान है जो सर्व व्याप्त है।

अशिरस्कं हकारान्तम्
अशेषाकार संस्थितम्
अजस्रं उच्चरन् अन्तं
स्वं तमात्मानम् उपास्महे। यो. व.

इस ब्रह्माण्ड का कर्ता और इसमें व्याप्त उसके समस्त कर्म उनका आपसी प्रभाव, क्रियायें, प्रतिक्रियायें परिस्थितियाँ तथा उनका सम्बन्ध व वर्णात्मक स्थिति आदि सभी का विवेचन ही यहाँ ब्रह्माण्ड विद्या है।

—✻—

ब्रह्माण्ड का कर्ता

समस्त शास्त्रों पुराणों स्मृति ग्रन्थों के आधार पर ब्रह्माण्ड का कर्ता स्वर* है। इसलिए स्वर ज्ञान परम तत्व और श्रेष्ठ कहा गया है।

सर्व शास्त्र पुराणादि स्मृति वेदांग पूर्वकम्।
स्वर ज्ञानं परं तत्वं नास्ति किंचन वरानने ।।
शिव स्वरोदय।

उस स्वर ज्ञान में भी उकार स्वर का ज्ञान सर्वश्रेष्ठ माना गया है। यह ही शिव है। ब्रह्म है और गोपनीय गहन ज्ञान का सार है।

गुह्यात् गुह्य तरं सारं
उकार प्रकाशनम्। शि. स्व.

यह उकार साम स्वरूप है। उद्गीथ है। और उपासनीय है।
ॐ एतत् अक्षरं उद्गीथं उपासीत् एष उ साम। एष उ वा उद्गीथः। छा. उ. 3-13-7

यह उकार ऊर्ध्व रूप में सोम है। और अधोरूप में अग्नि है।

ऊर्ध्व शक्ति मयं सोमः अधो शक्तिमयोऽनलः।
बृ. जा. उ.

यह छन्दात्मक है। इसने छन्द** क्रम से ही इस विश्व का निर्माण किया है।

यः छन्दसाम ऋषभो विश्व रूपः।
छन्दोभ्योऽ ध्यमृतात्सम्बभूव।
छन्दोभ्यः एव प्रथममेतत् विश्वं व्यवर्तत्। तै. उ.

---

* स्वर आदित्यो भवति भासं च ज्योतिषाम्। निरुक्त

** छन्दांसि छन्दनात्। निरु.

इस स्वर ब्रह्म के तीन चरण हैं। या तीन गति क्रम हैं। पहले चरण उकार रूप में वह स्वयं है। दूसरे चरण इकार रूप में उसकी प्रकृति या माया है। तीसरे चरण अकार रूप में उसकी सृष्टि है। वह उकार रूप में ज्योतिमय अमृत रूप है। इकार रूप में सृष्टि का पालक है। अकार रूप में सृष्टि का जनक है।

स्वरसेन ब्रह्मैवाधीयते
पादो अस्य सर्व भूतानि।
त्रिपाद अस्य अमृतं दिवि। छां. उ.

यह अक्षर ब्रह्म ही वर्ण है शब्द है और ज्योति है।

वर्णाः एवं तु शब्दाः अतः परमेव ब्रह्म
ज्योतिः शब्दमितिसिद्धम्। छा. उ.।

सर्वत्र यह एकात्मक ब्रह्म ज्योति ही प्रधान है। यह एक, तीन, पांच, सात नौ क्रम से गतिमान है।

सर्वत्र हि तत् एकं प्रधानं। स एकधाभवति। त्रिधाभवति। पंचधा भवति। सप्तधा भवति। नवधा भवति छा. उ. 7-26-2

इसकी प्रति सत्ता दो, चार, छः, आठ सम क्रम से है।

गौरी निर्मिमाय तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी, षट्पदी अष्ट पदी नव पदी वभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन।*

ऋ. 1-164-41

यह उकार अक्षर ब्रह्म सब कुछ है। यह हमारा मन है। बुद्धि है। विज्ञान है। कर्म है। सम्पत्ति है। जो कुछ भी संसार मं और इससे परे है वह सव ब्रह्म है।

ब्रह्म चिद् ब्रह्म मनो ब्रह्म विज्ञान वस्तु च ब्रह्म अर्थो ब्रह्म शब्दश्च ब्रह्म सर्वत्र एव च। ब्रह्म सर्व मिदं विश्वं विश्वातीतं च तत्परम् वस्तु तस्तु जगन्नास्ति सर्व ब्रह्मैव केवलं॥ यो. व.

---

* द्वितीयश्च मे चतस्रश्च मे, अष्टौश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।

य. वे. 18-25

इस उकार रूपी ब्रह्म की महा योनि से ही अहंकार की उत्पत्ति हुई और उससे समस्त वर्णों की उत्पत्ति हुई। यह अहंकार ही समस्त का कर्ता बन गया।

तासां ब्रह्म महत् योनिः अहं बीज प्रदः पिता।

—गीता

अहं एव इदं सर्वम्। अहंकार कर्ता न पुरुषः ।।

सां. द.

हठ योग के मत में ब्रह्म नादात्मक या वर्णात्मक है। इसका क्रम मनुष्य का शरीर व उसकी इन्द्रियों, मन, मारुत, लय, नाद के रूप में है।

इन्द्रियाणाम् मनो नाथो
मनोनाथस्तु मारुतः।
मारुतस्य लयो नाथः
सलयो नाद आश्रितः ।। ह. यो. प्र.

यह उ ही अग्नि, वायु, आदित्य, चन्द्र, प्रजापति आप आदि सब कुछ है।

तदेवाग्निः तदादित्य तद् वायुः तद् उ चन्द्रमाः।

तद् एव शुक्रम् तद् ब्रह्म ता आपः सः प्रजापतिः। य. वे. 32 ।।

इस निर्माणक ब्रह्म का रंग नीला है। अतः यह नील ग्रीव कहलाता है। ग्रीव ग्रहण कर्ता को कहते हैं।

ॐ नीलग्रीवाः शिति कण्ठा दिव रूद्रा उपाश्रिताः। य. वे. 16·56

अतः जो सर्वत्र व्याप्त है उस जेष्ठ श्रेष्ठ ब्रह्म को हमारा नमस्कार है। जिसमें हम सब आहुत हैं।**

---

* त्रिवृत कर्तुम् एव तत् तेजो ज्योतिः शब्दः। ब्र. सू.
कर्म ब्राह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवं।
तस्मात् सर्व गतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ।। गीता

** ब्रह्मार्पण ब्रह्म हविः ब्रह्म अग्नौ ब्रह्माणा हुतम्
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना। गीता 4-34

यो भूतं च भव्यं च सर्वयच्चाधि तिष्ठति ।
सर्व यस्य च केवलं तस्मै जेष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।

यह उ रूपी ब्रह्म ही भू, भुव, स्व, सबका अधिपति होकर सर्वत्र व्याप्त है और हम उसी से आवेशित हैं और उसी का वरण करते हैं।

ॐ भूपते भुवनपते भुवांपते

महतो भूतस्यपते ब्रह्माणं त्वां वृणीमहे ।

तै. ब्रा. 3-7-16 ।।

इसने ही रूप प्रति रूप फिर रूप इस प्रकार के त्रिकम से ही इस संसार की रचना की है।

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव
तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय
इन्द्रो* मायाभिः पुरुरूप इयते
मुक्ता हि अस्य हरयः शतादश ।

ऋ. वे. 6-47-18

—✲—

* इं ददाति इति इन्द्रः ।

भारतीय चिन्तन में ब्रह्माण्ड विद्या

1. वेदों में

यह सार्वभौम सत्य है कि वर्तमान विश्व के समस्त चिन्तन का श्रोत वेद है। इस पृथ्वी के समस्त दर्शनों, भाषाओं, साहित्यों, विचारों का जनक भी वेद ही है। वेद की ऋचाओं में छिपे तत्थ्यों को वर्तमान वैज्ञानिक चिन्तन के समतुल्य करने पर मन में बरबस यह विचार आने लगता है कि वैदिक मंत्र एक सर्वोन्नत व श्रेष्ठ सभ्यता के सूत्रात्मक स्मारक हैं। इन्हें अपौरुषेय कहे जाने का कहीं यह रहस्य तो नहीं कि ये किसी अन्य खगोलीय पिण्ड के सम्पर्क सूत्र हों और अलौकिक माने जाते हों कुछ भी हो लेकिन आज से हजारों साल पहले रचे गये इन वैदिक मत्रों में वर्णित एकात्मक ऊर्जावाद और ब्रह्माण्डी तरंग विज्ञान के सिद्धान्त जिन्हें आज ब्रह्म विद्या, ब्राह्माण्ड विद्या या कॉसमोलॉजी कहते हैं। वे वर्तमान के समस्त वैज्ञानिक चिन्तन के अनुरूप हैं तथा पूर्णतया नवीन और श्रेष्ठ हैं।

वेदों की मान्यता है कि इस ब्रह्माण्ड में जो भी कुछ है जिस रूप में भी है, जहाँ कहीं भी है चाहे वह पिण्ड रूप में है या आभा के सूक्ष्मतम रूप में है। उस सबका बनाने वाला एक अति सूक्ष्म वर्ण कण है। जिसका नाम 'उ' है। यह समस्त चर और अचर उस 'उ' से ही प्रारम्भ होते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं। यह 'उ' ही सबका जनक व परमेश्वर है। इसने ही अधोगत होकर अर्थात् क्रमशः गुरुतर होकर इस समस्त ब्रह्माण्ड की रचना की है। विशालकाय खगोलीय पिण्ड, आकाश गंगायें, कालविवर जैसी अनेकों अद्भुत रचनायें इसने अपने अधोक्रम से ही बनाई हैं। क्रमशः सूक्ष्म होते हुए उद्धर्गत होकर इसने ही वर्णकणों के सूक्ष्म रूप में अपनी इस समस्त रचना को स्वयं में समेट लिया है। इस 'उ' का अधोगत और उद्धर्गत रूप ही उच्चरण कहलाता है। जिसके दो पहलू सृष्टि और लय हैं।

यह समस्त जगत इस 'उ' से प्रारम्भ होकर इसी में समाप्त हो जाता है। इसलिए यह समस्त सृष्टि उन्न कहलाती है[1]। इस उ के परिवेश में एक से अनेक और अनेक से एक होने के कारण उर्विया या ऊर्जा कहलाती है। वेदों में अनेकों ऋचायें इस वर्णात्मक ब्रह्म 'उ' का विवेचन करती हैं। उनमें कहा गया है कि यह 'उ' नामक आभा सास्वत है। अमृत है। सूर्य जैसे पिण्डों का निर्माण करने वाली और समस्त देवताओं[2] का आश्रय है।

उद्[3] उ ज्योतिः अमृतं विश्वजन्यं
विश्वानरः सविता देवो अश्रेत्।
उद् उ स्त्रिया सृजते सूर्यः॥ ऋ. वे.

यह उ अक्षय है कभी भी किसी भी स्थिति में नष्ट होने वाला नहीं है।

न वा 'उ' एतत् म्रियसे न रिष्यसि। ऋ. वे.

इन दृश्यमान समस्त ज्योतियों में 'उ' ज्योति[4] ही श्रेष्ठ है अतः हमें उस सर्व व्यापक 'उ' प्रभु की अपने ज्ञान व कर्म से प्राप्ति करनी चाहिए[5]। यह उ जो अपने स्वरूप से सर्वत्र व्याप्त है उसे प्राप्त कर हम उसके रहस्य को जानें उसे छिपायें नहीं क्योंकि यह ही वास्तविक रूप में सत्य है[6]। यह आनन्द का दाता है इसका स्वाभाविक क्रम सृष्टि के लिए लाभकर है और अस्वाभाविक क्रम क्षयकारी है अतः इससे बचते रहें[7]। यह 'उ' ही हमारे समस्त कर्मों का निर्णायक है। इससे ही प्रेरित होकर हमारे विचार और कर्म बनते हैं। यह हमारी समस्त शक्तियों का स्वामी है[8]। इससे भिन्न कोई नहीं है। यह जो कुछ भी दृश्यमान, श्रव्यमान, चिन्त्यमान जगत है सब का सब उ नामक आभा से रचा गया है[9]।

---

1 उन्नेतर उन मा नयेति इति आह। विष्णुः वा उन्नेता। जै. ब्रा. 2-68
2 देवता का तात्पर्य आभा मण्डल से भी है।
3 ऋ. वे. 7–76-1
4 ऋ. वे. 7-79-3
5 ऋ. वे. 8-7-10
6 ऋ. वे. 1-38-4
7 ऋ. वे. 5-74-9
8 ऋ. वे. 6-21-1, 6-21-10
9 ऋ, वे. 6-32-2

उद् उ स्रियाणाम् अस्रजन् निदानम् ।

यह उ समस्त ज्ञान और कर्म का कर्ता होने के कारण सबमें श्रेष्ठ है। समस्त विकारों को दूर करने वाला है तथा अदिति, मित्र, वरुण, अर्यमण, भग, पवमान आदि समस्त ज्योतियों का जनक है[1]। यह उ जो सूर्य से भी अधिक तेजस्वी है हम सब उसकी हवि अर्थात् भोज्य हैं। भोज्य और भोजक सिद्धान्त से इसने स्वयं का विस्तार करके सृस्टि की रचना की है।[2] सृष्टि के इस क्रम में वह सहस्रों रूप बनाकर सबका आश्रय दाता है।[3] यह परमेश्वर है सबका पति है। अपनी कान्तियों के आवरण से इसने हम सबको आच्छादित कर रखा है।[4] निरुक्त कार ने इस विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि इस 'उ' ने रोहण और अवरोहण से ही इस समस्त की रचना की है।

यथा उ एतत् रोहात् प्रति अवरोहात् चिकीर्षित इति आम्नाय वचनात् एतत् भवति। निरुक्त

इस 'उ' के तीन क्रम से ही पृथ्वी आकाश और अन्य भुवनों का निर्माण हुआ। वह ही इन सबका एकात्मक आधार है।

यस्य उ त्रिधातु पृथिवी उत् द्याम् ।
एकोदाधार भुवनानि विश्वा । ऋ.1-154-3

जिनके लिए यह 'उ' ब्रह्म है वे ओह ब्राह्मण कहलाते हैं और जो इस 'उ' के समस्त गुप्त रहस्यों और रहस्यानुसार नामों को जान लेते हैं वे ही कवि हैं।[5]

---

[1] ऋ. वे. 6-51-3, 6-51-10, 7-30-2

[2] उ त स्वं तन्वः शुम्भमानाः। ऋ. वे. 7-56-1

[3] ऋ. वे. 9-38-1

[4] ऋ. वे. 10-31-4

[5] उ ह ब्रह्म एषां अस्ति ते ओह ब्राह्मणाः। तथा ऋ. वे. 8-41-5

वेदों में वर्णित इस उ के अन्य नाम ऊ, उत, उष् उग् उर्, ॐ पु, पुरुष, ब्रह्म, अक्षर आदि हैं।[1]

उद् उषा उद् उ सूर्यः
उद् इदम् मामकं वचः।
उद् एजतु प्रजापतिः
वृषा शुष्मेण वाजिना ।। अ.वे. 4-4-20

यह पुरुष और स्त्री दोनों है।[2] उभयलिंगी है। ऊंकार रूप धारण करके इसने तीन क्रम से सात बार गति करके विश्व का निर्माण किया है।

ॐ ये त्रि सप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि विभ्रतः
वाचस्पतिर्वला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ।। अ.वे.

इसलिए यह सब जो कुछ भी है भूत भविष्य और वर्तमान सबका सब इस 'उ' के द्वारा रचा गया है। अतः ऊंकार है तथा अक्षरात्मक है।[3]

उर्ध्व उष् उणः ऊ उ अन्तरिक्षम् अन्वेमि। सा.वे. 1-5-4

---

[1] उत् आयुः उत् बलम् उत् कृतम् उत् कृत्याम् उत् मनीषाम् उत् इन्द्रियम् अ. वे. 5-9-4
उत् अग्रम् भूमिः वरुणस्य राज्ञ
उत् असौ द्यौः बृहती दूरे अन्ता
उत् समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी
उत् अस्मिन् उदके निलीनः अ.वे. 4-16-3
उत् इदानीम् भगवन्तः स्याम। अ.वे.
सा.वे. 1-5-5,
ऊंकार विन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ऊंकाराय नमो नमः।।

[2] स्त्रियः सतीस्तां उ मे पुंस आहुः। ऋ. 1-164-16

[3] उकारो विष्णु इत्याहुः व्यापकत्वान्महेश्वरः। नदि. का.-9
पुरुष एव इदम् सर्वं यत् भूतं यत् भाव्यम्
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति। यजुर्वेद

ॐ इति एतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपाख्यानम्। भूतं भवत् भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्च अन्यत् त्रिकालातीतं तदपि ऊंकार एव ।। मा. उ.

यह 'उ' रूपी पुरुष सवमें व्याप्त है यही सब कुछ है। अमृत है तथा भूत भविष्य और वर्तमान में रहने वाला है। हम अन्तरिक्ष में इसकी उर्ध्वगति को जान सकते हैं। वहाँ यह उष् उण् ऊ उ क्रम से विद्यमान है।

उपरोक्त सन्दर्भों से यह प्रकट होता है कि वेदों में 'उ' वर्ण को ही अन्तिम निर्माणक या सूक्ष्मतम कण माना है। जिसने सृष्टि की रचना की है। उसके प्रभाव से उत्पन्न समस्त ब्रह्माण्ड को ऊर्जा कहा है अर्थात् उ से पैदा होने वाला कहा है। वैदिक निर्वचन कर्ताओं ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि यह संसार जिससे पैदा हुआ है वह जातवेदस है। उदुत्य है।[1] उरु ज्योति है। ऊन्निन्यथु है। यह माना गया है कि सृष्टि के प्रारंम्भ में उ और उसका आवरण उल्व ही था।

महत्तदुल्वं स्थविरं तदासीत् ऋ. वे.

यह सृष्टि अन्ततः 'उ' की ओर गति करती है अतः उदयेमिर है। 'उ' आदि स्वर है। आदि वर्ण है अनन्त है। अक्षर है। इसकी सृष्टि का नाम उस्रिय है। यह हमारी वाणियों का स्रोत है इस उ से निकली वाणियां हमें इसकी ही ओर ले जाती हैं और शक्ति प्रदान करती हैं। क्योंकि ये उद् इद् अव् रूप में अन्तरिक्ष में सर्वत्र व्याप्त हैं।[2]

उद् इद् अव् अस्तमान अन्तरिक्षे
प्रणहे हस्व। य. वे. 5-27

---

[1] उदुत्यं जातवेदसम्। ऋ.वे.। उरुः ज्योतिः ऋ. वे. 1-117-21
उनिन्यथु। ऋ. वे. 1-116-8 उः वशः।

[2] उर्जस्यागिरस्यूर्ज म्रदा उर्ज्ज मयिधेहि। य. वे. 4-10

इसका दृश्य मान रंग या वर्ण नीला है।[1] यह इ और अ वर्णों का निर्माणक है तथा इसकी प्रथम सृष्टि वर्ण-सृष्टि है। यह अपनी सारी सृष्टि को निगल जाने वाला है। अतः इसको नीलग्रीव कहते हैं।

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय
सहस्र वीक्षाय मीढ्ढसे।
अथो येऽस्य सत्वानो
अहम् तेभ्योऽकरं नमः॥
असौ यो अवसर्पति
नीलग्रीवो विलोहितः॥ य.वे. 16-7-8

वेदों में उ कार को शुभ्र या नील वर्ण का कहा गया है।

हिरण्यमयपरे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तत शुभ्रं ज्योतिषां ज्योति तद्यादात्म विदो विदुः.। ऋ. वे.

हिरण्य मय कोश के बाद नीलात्मक ब्रह्म की स्थिति है। जो सब ज्योतियों में श्रेष्ठ[2] है और श्रेष्ठ नाद है। त्रिक्रम से बढ़ने वाला विष्णु है। इस दृश्य मान जगत में उस 'उ' ब्रह्म का रंगात्मक रूप चित्र संख्या 1 के वाह्य वृत में दिखाया गया है। जो जगत का कर्ता स्वयंभू स्वर है और अन्य स्वरों का जनक है तथा अच्छेद्य अभेद्य और अनादि है। वह हर आकार प्रकार और निराकार में है। अनन्त है। सूक्ष्माति सूक्ष्म होकर भी सारा ब्रह्माण्ड इसकी साकार प्रजनन क्रिया के परिणाम स्वरूप ही है। सृजन इसकी क्रिया है और संहार इसकी प्रतिक्रिया। यह सृजन को जीवन मृत्यु द्वारा अपने से अपने तक के स्व चक्र में बांधे रहता है।

सम्पूर्ण जगत अव्यक्त तथा व्यक्त रूप म इसकी प्रतिभाति है। यह रंगात्मक रूप में दृश्यमान अवश्य है पर इसकी अन्तिम शक्ति को

---

[1] नादः चन्द्र समाकारो विन्दुः नील समप्रभः। ऋषि मण्डल स्तोत्र-12
नादात्मनः त्रयोदेवाः ब्रह्मा विष्णु महेश्वराः।
परब्रह्म पराशक्ति ॐकारो नाद सम्भवाः॥
संगीतोपनिषद् सारोद्धार-1-25-27

[2] एकं नादं नोत्खिदति सलिलाद् हंस उच्चरन्।
सचेद् तम् ऊद्धरेदंग न मृत्युर्नामृतं भवेत्॥ अ. वे. 11-4-21

पाना असम्भव है क्योंकि इसके लिए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में प्रतिक्रिया आवश्यक है जो मानवीय शक्ति से बाहर है। लौकिक तथा वैदिक मतानुसार गायत्री मंत्र में इस शक्ति का गणितीय आकलन है।

गायत्री मंत्र में वर्णित ॐकार ब्रह्म शक्ति का त्रिगुणात्मक रूप है। अर्थात 3 का अंक है। उसके बाद आने वाला प्रत्येक वर्ण इस त्रिगुणात्मक रूप में लीन होने के कारग अस्तित्व हीन है। अतः शून्य है। गायत्री गति की प्रतीक है अस्तु तीन के बाद आने वाले प्रत्येक शून्य ब्रह्म गति के प्रतीक हैं। चूंकि गति स्वयं में एक शक्ति है अतः इस ब्रह्म गति को ब्रह्म शक्ति में बदल सकते हैं।

ॐ	भूः	भु	वः	स्वः	तत्	स	वि	तुः	व	रे	ण्यं	भ	र्गो
3	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
दे	व	स्य	धी	म	हि	धि	यो	यो	नः	प्र	चो	द	यात्
0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0

ब्रह्म गति = 3×10^{27} कि. मी. प्र. से.

= 3×10^{30} मी. प्र. से.

ब्रह्म शक्ति = $(3 \times 10^{30})^2$ ज्यूल

यदि प्रकाश कण के भार को एक इकाई माना जाय तो कणों की गति की तीव्रता के आधार पर क्रमोतर हल्की वस्तु तीव्र गति शील है तो ब्रह्म कण भार = $\frac{1}{3 \times 10^{30}}$ प्रकाश कण भार के बराबर होगा।

तैत्तिरीयोपनिषद के आनन्दवाद से यह बात काफी स्पष्ट होती है। तैत्तिरीयोपानिषद बल्ली 2 अनुवाक 8 में ब्रह्म गति को निम्न ढंग से प्रकट किया गया है*।

अन्न x 100	=	मानुष आनन्द
मा. आ. x 100	=	मनुष्य गन्धर्व आनन्द
म. ग. आ. x 100	=	देव गन्धर्व आनन्द
दे. ग. आ. x 100	=	पितृ आनन्द

---

* ये ते शतं मानुषानन्दाः। स एको मनुष्य गन्धर्वाणम् आनन्दः॥

तै. उ. 2-8

पि. आ. x 100	=	देव आनन्द
दे. आ. x 100	=	कर्म देव आनन्द
कर्म. दे. आ. x 100	=	एक देव आनन्द
ए. दे. आ. x 100	=	इन्द्र आनन्द
इ. आ. x 100	=	बृहस्पति आनन्द
बृ. आ. x 100	=	प्रजापति आनन्द
प्र. आ. x 100	=	ब्रह्म आनन्द*

इस प्रकार अन्न से ब्रह्म तक एक के आगे 22 शून्य लगाने पर ब्रह्म गति आती है।

जो निम्न सूत्र से भी प्रकट हो सकती है।

ब्रह्म गति = अन्न$\times 10^{22}$ आनन्द

अन्न का तात्पर्य प्रकाश से है। शत पथ ब्राह्मण 8-5-3-3 में "अन्नम् हि रश्मि" कहा गया है। गौ भी प्रकाश की किरण को कहते हैं। अन्नं उ गौः भी शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है।

अतः अन्न का तात्पर्य प्रकाश से है। प्रकाश की गति 300000 कि. मी. प्रति सेकण्ड मानी जाती है। इस प्रकार प्रकाश की गति को ब्रह्मगति में आकलन किया जाय तो वह भी 300000×10^{22} या 3×10^{27} के क्रम में आती है। इससे यह प्रकट होता है कि ब्रह्म की गति की तरंग अनन्त आकाश से चलकर पलक झपकने से पहले ही हमें पार कर अनन्त में चली जाती है। ब्रह्म शक्ति का आभास हम वर्तमान वैज्ञानिक परिकल्पनाओं से तुलना करके भी कर सकते हैं।

वर्तमान के वैज्ञानिकों का मत है कि सूक्ष्म परमाणु के अन्तः छेदन से तीन प्रकार के कण प्राप्त होते हैं। जिनको क्रमशः प्रोटान न्यूट्रान इलेक्ट्रान कहते हैं इन कणों के अन्तर्गत भी प्रकाश कण हैं। और उसके उपरान्त वर्ण कण हैं। जिनको क्वार्कों की अन्तर नाभि कहा जाता है। इन क्वार्कों के विखण्डन के लिए हमें अनन्त ऊर्जा की आवश्यकता हो सकती है। जो मानवीय शक्ति से बाहर है।

---

* मानुष, पितृ, देय आदि शब्द कान्तियों के लिए भी प्रयुक्त हैं। मानस का तात्पर्य मनोजव या मन कण से भी है। आनन्द ब्रह्म वाचक भी है।

अतः वर्ण कणों को प्राप्त करना अपौरुषेय ही है। प्राचीन भारतीय दर्शनों की मान्यता है कि वर्ण शक्ति ब्रह्माण्ड में सर्वत्र व्याप्त है जो निम्न कण क्रम से सम्पर्क शील है।*

पर ब्रह्म
|
ब्रह्म
|
आत्म
|
वर्ण
|
बुद्धि
|
मन
|
प्रकाश
|
रज
|
परमाणु

वेदों में कहा गया है कि मनुष्य के पास मानसिक वेग है और वह अपने मनोजवों** के द्वारा ब्रह्म शक्ति से संपर्क स्थापित कर सकता है और उन तमाम रहस्यों को जान सकता है जो अनन्त में कहीं भी घट रही हों क्योंकि प्रत्येक घटना अनन्त शक्ति के कार्यों के परिणाम स्वरूप ही हो रही है।

---

* रजांसि चित्रा विचरन्ति तान्यवः। ऋ.वे. 5-63-5

** 1. अक्षण्ववन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा वभूवुः।
आदध्नास उपकक्षास उत्वे हृदा इव स्नात्वा उत्वे ददृश्रे। ऋ.वे.

2. हृदा तटेष्टेषु मनसो जवेषु यदा ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः
अत्राहं त्वं विजहुर्वेद्याभिरोह ब्रह्माणो विचरन्ति उत्वे।
ऋ. वे. 10-71-8

ब्रह्माण्ड की समस्त आत्माय ब्रह्म आत्मा से निर्मित होने के कारण उसके अनुरूप ही हैं उसी के गति क्रम से बनी हैं*। यहां चित्र संख्या 1 में उस अनन्त शक्ति का सृष्टि हेतु वर्णों का क्रमिक विकास दिखाया गया है। जहाँ वह नील वर्णीय उकार से लेकर रक्त वर्णीय अकार तक अहंकार का रूप धारण कर लेता है। इस चित्र का नाभि केन्द्र अहंकार का ही द्योतक है जो सृष्टि को मूल कारक का बीजात्मक रूप है। प्रत्येक वर्ण चक्र के द्वारा यहाँ ब्रह्म के क्रमिक एक, दो, तीन चरण या पादों को भी प्रकट किया गया है। ब्रह्म का चतुर्थ पाद उसकी अत्यधिक उत्तेजना के फलस्वरूप ही निस्सरित है, जो अत्यधिक आवेशित है। पुराणों की यह कथा कि ब्रह्म अपनी पुत्री पर अनुरक्त हो गया का तात्पर्म ब्रह्म का स्वयं से निस्सरित मकार या मातृशक्ति या प्रतिब्रह्म के प्रकट होने का ज्ञान कराता है। जो द्वैतवाद की प्रकृति है जिसने ब्रह्म के साथ प्रतिक्रिया करके पुत्र रूप में पुनः नई क्रिया को जन्म देकर इस संसार की रचना की। अतः उ की उमा प्रतिक्रिया स्वरूप ही इकार है जिसको हिरण्यगर्भ का केन्द्र भी कहा जाता है। हिरण्य अर्थात पीला स्वरूप ही है गर्भ या उत्तेजना का केन्द्र जिसका वह ही हिरण्यगर्भ है। अस्तु निम्न ऋचा में कहा गया है कि आदि में प्रकृति व पुरुष रूपी हिरण्यगर्भ स्वरूप का ही निर्माण हुआ जो इस जगत का जनक है या आदि कारण भूत है।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
सदाधार पृथिवी उत् द्यां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। ऋ. वे. 10-121-1

---

* (क) सर्वं हि एतत् ब्रह्म, अयम् आत्मा ब्रह्म, सो अयम् आत्मा चतुष्पाद्। माण्डूक्योपनिषद

(ख) अपि तेषु त्रिषु पदेषु एव अस्मिन् येषु विश्वभुवनम् आविवेश ।। सा. वे. 23-49

चित्र संख्या 1 का पीला वृत का वाह्य आवरण ही हिरण्य का जरायु है जिसके अन्दर इ वर्ण का जन्म हुआ* । जिसके लिए वेद में निम्न ऋचा कही गयी है ।

य ईं चकार स नो अस्य वेद
य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्
स मातु योनो परिवीतो अन्तर
बहु प्रजा निऋर्तिमाविवेश ।। ऋ. वे. 1-164-32

इस हिरण्य के लिए अनेकों ऋचायें वेद में हैं जिनमें कहा गया है कि हिरण्य ही हमारा पालन कर्ता है ** । हिरण्य इ का नाम है । इस इ को हिरण्यगर्भ ने पैदा किया है अतः आभाओं में इ नामक आभा प्रथम पैदा होने वाली है और प्रथम प्रतिवर्ण होकर अपने जनक की भांति चतुष्पाद व त्रिधातु रूप में सर्वत्र व्याप्त है ।

चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तो
दशगर्भं चरसे धापयन्ते ।
त्रिधातवः परमा अस्य गावो
दिवः चरन्ति परिसद्यो अन्ताम् ।। ऋ. वे. 5-47-6

यह माना गया है कि हिरण्यगर्भ ने इ को पैदा किया और इस इ ने पैदा होकर सबको पैदा किया । चित्र संख्या 1 में पीलावृत हिरण्य का स्वरूप है । इस इ ने अपना प्रति रूप अ पैदा किया ।

---

* 1. इष् कर्तारं अन् इष् कृत सहस्कृतं शतमूर्तिं शत क्रतुम् ।
ऋ. वे. 8-99-8

2. हिरण्यरथः स हिरण्य सन्दृगपां
नपात्सेदु हिरण्य वर्णः :
हिरण्ययात्परि योने निर्षधा
हिरण्यदा देदत्यन्नमस्मै ।। ऋ. वे. 2-35-10

**(क) इकारः सर्व वर्णानाम् शक्तित्वा कारणं मतम् । नदि. का. 7
(ख) यो जात एव प्रथमो मनस्वान्
देवो देवान् क्रतुनापर्यभूषत् ।
यस्य शुष्मात् रोदसी अभ्यसेतां
नृम्णस्य मद्वा स जनास इन्द्रः ऋ. वे.

जिसने अहम्[1] कार रूप धारण कर विश्व को पैदा किया।

हिरण्यवी सुभगा हिरण्यकशिपुर्महीं।
तस्मै हिरण्यद्रापयेरात्मा अकरं नमः ।।

इस इ को इष्, इम्, इत्, इर् तथा इन्द्र भी कहा गया है।

इं धारयति ददाति वा इन्द्रः।

जो इ को धारण करता है वह इन्द्र है। इस इ को बनाने वाले को इष्कर्तार[2] भी कहा गया है। जिसने ही इष् अन् के रूप में आगे बढ़ते हुए अनेकों रूप धारण किए।

ऋग्वेद की निम्न ऋचा में कहा गया है कि किंशुक के फूल की तरह का लाल वर्ण विश्व का निर्माणक है जो पीले वर्ण के सुन्दर चक्र से आवृत है[3]। यह लाल वर्ण जब उर्ध्वगत होता है तो स्वभावतः अपने परिवृत में बदलते हुए आगे बढ़कर उ की कान्ति को प्रकट करता है।

सुकिंशुकं शल्मलि विश्वरूपं
हिरण्य वर्णं सुवृतं सुचक्रं
आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकं
स्योनं पत्ये वहुतं कृणष्व ।। ऋ. वे. 10-85-20

वास्तव में इस 'उ' ने ही अपने त्रिक्रम से तीन वर्णों को बनाया और सृष्टि हेतु इः अः को जन्म दिया[4]।

एष उ स्य पुरन्नवो जज्ञानो जन्यन्निषः
धारया पवते सुतः ।। ऋ. वे. 9-3-21

---

[1] (क) अहम्कार कर्ता न पुरुषः।
(ख) य एको ईशत् ईशनीभिः
सर्व लोकान् ईशत् ईशनीभिः ।। अ. वे.

[2] क इ व्यक्त न स नीला रुद्रस्य मर्या अधा स्वसा ऋ. वे. 7-56-1

[3] स ईं बृषा जयत्तासु गर्भं
स ईं शिशुर्धार्यति तं रिहन्ति
स अपानपादनभिम्लात वर्णो
अन्येरेणेवेह तन्वा विवेश ऋ. वे. 2-35-13

[4] एष उ स्य वृषा रथोऽव्यो वारेभिरर्षति।
गच्छन्वाजं सहस्रिणम् ।। ऋ. 9-37-1

हमारी वाणियां भी उस अनन्त कर्ता 'उ' से ही बनी है। अतः उसी की ओर गतिशील हैं[1]।

वेदों में आदि वर्ण 'उ' और उसका प्रतिरूप इ इन दोनों के प्रतिकर्षण से पुनः नया रूप अ इस क्रम से सृष्टि का विकास माना गया है।

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप इयते मुक्ता हि अस्य हरयः शतादश ।।
ऋ. वे. 6-47-18

इस अ को आ, अग्नि अर्क, ब्रह्मा, अज, अत्, आप आदि भी कहा गया है। इसको चित्र संख्या 1 में लाल वर्णीय वृत से दिखाया गया है।

ब्रह्मा देवानाम् पदवी कवीनामृषिः
विप्रणाम् महिषो मृगाणाम्।
श्येनो गृध्राणाम् स्वधितिः वनानाम्
सोमः पवित्रम् अ इति रेभन ऋ. वे. 9-96-6

वैदिक मंत्रों में श्येन मृग, गृध्र, सोम, गाव, अर्क[2] आदि अनेकार्थक शब्द हैं[3] जो ब्रह्माण्डीय तरंगों की विशेश अवस्था के भी सूचक हैं। सोम की त्रिगुणात्मक कान्ति रूप में अनेक ऋचायें हैं।

सोमं गावो धेनवो वावशानाः।
सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः।
सोमं सुतः पूयते अज्यमानः
सोमे अर्काः त्रिष्टुभः[4] सन्नवन्ते ।। ऋ. वे. 9-97-35

---

[1] इमां उ त्वां शतक्रतोऽभि प्रणोमुवुगिरः।
इन्द्र वत्सं न मातरः ।। ऋ. वे. 6-45-25
इमां उ त्वां सुते सुते नक्षन्ते गिर्वणोगिरः
वत्स गवो न धेनवः ।। ऋ. वे.

[2] अयं वा अग्निः अर्कः। श. ब्रा. 8-6-2-19

[3] श्नेन = सफेद कान्ति + गृध्र = प्रकाश, 1 गाय = प्रकाश किरण

[4] यत् त्रिरस्तोभत् तत् त्रिष्टुभः त्रिष्टुपत्वत् 1 नि.

इसी तरह अग्नि के विषय में कहा गया है कि वह ऋत नामक कान्तियों में सर्व प्रथम है। जिस कान्ति से इसका जन्म हुआ वह 'इ' नामक कान्ति है। यह अग्नि[1] या 'अ' नामक कान्ति स्थूल तत्वों को निगलते हुए सूक्ष्म कान्तियों में स्वयं लीन हो जाती है।

अहम् अस्मि प्रथमजा ऋतस्य
पूर्वन्देवेभ्योः अमृतस्य नाम।
यो मां ददाति स इ देव
मा वा अहम् अन्नम् अन्नम् अद् अन्त अद्मि ॥

ऋ. वे. 3-27-8

वेद की ऋचाओं में यह स्पष्ट है कि ब्रह्माण्ड का कर्ता वर्ण 'उ' है। यह ही अनन्त ऊर्जा है। शेष सब इससे ही उत्पन्न हुए हैं। यह निर्माणक नील वर्ण ही है। इसने ही त्रि क्रम रूप से अन्य पीले लाल वर्णों का निर्माण किया है। यह ही सृष्टि कर्ता अहम् का सूक्ष्म रूप है।

इद्रं मित्रं वरुणं अग्निं आहुः
अथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति[2]
अग्निं यमं मातरिश्वानम् आहुः ॥

ऋ. वे. 1-164-46

—✲—

---

[1] (1) अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा
घृतं मे चक्षु अमृतं ने आसन्
अर्कः त्रितातु उ रजसो विमानो
अजस्रो धर्मो हविरस्मि ताम ॥ ऋ. वे. 3-27-7

(2) अकारो ज्ञप्तिमात्रं इकार चित् कला मता ॥ न. का. 9

[2] अकारश्च इकारश्च उकारश्च तथा त्रयम्।
अन्तादि भाव योगेन सवर्णे तु चतुर्विधम् ॥ लघु ऋक् तंत्र संग्रहे।

2. ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थों में

वेद मंत्रों की व्याख्या जिन ग्रन्थों में सर्व प्रथम उपलब्ध है वे ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थ हैं। ये ग्रन्थ भी वेद में वर्णित उ वर्ण को ही ब्रह्माण्ड का कर्ता मानते हैं तथा वेद द्वारा दिए गए एकात्मक ऊर्जावाद या एकात्मक ब्रह्म सिद्धान्त को ही प्रतिपादित करते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार यह सम्पूर्ण विश्व वर्णमय या ब्रह्ममय है। एकाक्षर है। वाणी का सूक्ष्म रूप है तथा इसी से दिव्य कान्तियाँ या देवता पैदा हुए हैं।

ब्रह्म देवान् अजनयत्। ब्रह्म विश्वमिदं जगत।
एकाक्षरां द्विपदां षट्पदां च वाचं देवा
उपजीवन्ति विश्वे। तै. ब्रा. 2-8-8

यह ब्रह्म ही 'उ' नामक हमारी वाणी है। सबसे आगे है। सर्व प्रथम है। परम शक्तिशाली है। इस सम्पूर्ण चर अचर का संचालक राजा है[1]। यह उ ही हमारे देखने योग्य, सुनने योग्य है तथा विचारणीय और उपासनीय है।

तद् उ ह वा आत्मा दृष्टव्यः श्रोतव्यो
मन्तव्यो निदिध्यासितव्य इति। जै. ब्रा. 13-2

यह उ ही इन्द्र के रूप में सबका स्वामी है। ऋषियों की जिज्ञासा का केन्द्र है अनुष्टुप रूप में यह उ वाणी रूपी अहः है। इसी में सारे प्राणी आश्रित हैं। जो कुछ है वह सब इस उ नामक वाणी पर

---

[1] तद् उ वा आहुः वाक् जै. ब्रा. 2-53
वाक् वा अक्षरं। वाक् वै ब्रह्म।। जै. ब्रा. 1-112
ब्रह्म ह वा इदम् अग्रम् असीत्।। सा. वि. ब्रा.
स उ वीर्यवान। स एक राजो जगतः परस्याः तै. ब्र. 2-8-3 6

आश्रित है [1]। यह उ त्रिभृत है। इसके हिरण्य वर्ण के अण्डात्मक स्वरूप के वाह्य छोर का रंग नीला है तथा आन्तरिक छोर का रंग लाल है[2]।

तत् उ वा आहुः ब्रह्म वै त्रिवृत्। जै. ब्रा. 3-336
अधिधुर आदित्य गोप्तारो वरुणो
अधिपतिः नील रूपं। जै. ब्रा. 3-348

यह उ स्वयमेव आदित्य वरुण आदि का अधिपति होते सबकी आत्मा है और समस्त विद्याओं का केन्द्र है।

स एष त्रय्यै बिद्यायाः आत्मा एष उ एव एतत्
इन्द्रस्य आत्मा भवति य एवं वेद कौषितकि ब्रा. 2-6

यह उ ही अन्न रूप में सोम है। उदक रूप में यज्ञ कर्म का कर्ता है और सृष्टि कर्ता ब्रह्मा कहलाता है।

उसके प्रभाव से ही समस्त रसों की रचना हुई है। यह सृष्टि यज्ञ का अधिपति है तथा पिता व पुत्र के रूप में सर्वत्र है। यही कर्म है। हम सब चाहे अनचाहे इसी का अनुगमन करते रहते हैं।

अन्नम् उ वै सोम[3]। उदग् यज्ञीयं कर्म संतिष्ठते[4]। स ब्रह्मा सम्भवत्। तस्य तेजो रसो अत्यरिच्यत्[5]। स एषा त्रि विद्या यज्ञ[6]।

---

[1] इन्द्र उ वै प्रजापतिः। शांख्यायन आरण्यक
अनुष्टुप्सम्पन्नम् उ हैके वाक् वा एतत् अहः।
वाक् अनुष्टुप्। वाक् ह सर्वाणि भूतानि।
अथो वाग् इदम् सर्वम् इति। शा. आ. 2-17
ब्रह्म वा एकाहः। ब्रह्म एतत् अहः।
तत् उ ह विश्वामित्रो विजिज्ञासाम एव चक्रे। शा. आ. 1-6
स उ हैव प्रजापतिः। जै. ब्रा. 3-38

[2] तत् उर्मयस् समास्यन्त फाल फाडलिति। तत्
हिरण्य आण्डम् समेषत्। तस्य हरितं अधरं
कपालं आसीत् रजतम् उत्तरम्॥ जै. ब्रा. 3-361

[3] जै. ब्रा. 2-64 [4] जै. ब्रा. 2-63
[5] सा. वि. ब्रा. 1-1 [6] श. प. ब्रा. 1-4-3

य उ वै पिता स पुत्रः[1]। तद् उ हि एके होतव्यं एव मन्यते[2]। तम् उ हैके अनुगम्य मन्यन्ति[3]।

इन ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थों में भी 'उ' नामक वर्ण को आदि कर्ता माना गया है। इसने ही नील वर्णीय होकर समस्त वर्ण सृष्टि की रचना की और उस वर्णात्मक स्वरूपों को पैदा करने के उपरान्त इसने समस्त ब्रह्माण्ड को बनाया।

—*—

3. उपनिषदों में

उपनिषद वेद की ज्ञानमार्गीय शाखा के ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। ये ग्रन्थ ब्रह्म विद्या के वर्णन से परिपूर्ण हैं। वर्णात्मक ब्रह्म उसकी वर्णात्मक सृष्टि और उस सृष्टि का स्वरूप, गति, स्थिति और विसर्ग का निर्वचन ही उपनिषदों का मुख्य विषय है तथा उपनिषदों का उद्देश्य ही ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति है।

अक्षर या वर्ण ब्रह्म का उपनिषदों में वही तात्पर्य है जो वेदों म है। ये ग्रन्थ भी सम्पूर्ण सृष्टि को एक अक्षर 'उ' वर्ण की कान्ति के गति क्रम के फल स्वरूप ही मानते हैं। जो ॐकार रूप में सम्पूर्ण का कर्ता, धर्ता, और हर्ता है। सब कुछ कर लेने के बाद भी यह स्वयं में परिपूर्ण है।

---

1 जै. ब्रा. 1-56

2 जै. ब्रा. 1-57

3 जै. ब्रा. 1-61

ब्राह्मणोपनिषद में कहा गया है कि यह 'उ' बृहस्पति स्वरूप है। वाणी स्वरूप है। साम स्वरूप है। उद्गीथ है और ब्रह्म है[1]। सर्वत्र व्याप्त है। व्यापक है। सृष्टि के लिए इसने अनेकों वर्ण क्रमों में अपने को ढाला है। इसलिए यह क्रमागत शुभ्र नीला हरा पीला नारंगी और लाल है। इसकी अन्तिम अवस्था नीले रंग की विरलावस्था शुभ्र है।

एष उ एव ब्रह्मणस्पतिः वाक वै ब्रह्म तस्या
एष पतिः तस्मात् उ ब्रह्मणस्पतिः। ब्रा. उ.

तस्मिन् शुक्लं उत् नीलं आहुः
हरितं पिंगलं लोहिताश्च ।। ब्रा. उ. 3-9

छान्दोग्य उपनिषद् में 'उ' को सर्वत्र गतिशील[2] कान्तिमान, व्यापक, सम्पूर्ण लोकों का एकमात्र प्रशासक तथा आनन्दात्मक, अभयात्मक व अमृतात्मक कहा गया है। उकारादिक्रम से यह समस्त लोकों में व्याप्त है। सम्पूर्ण सृष्टि में इसकी अभिव्यक्तिः वर्णात्मक रूप में व्यापक होते हैं।

इन समस्त लोकों में उ कार रूप में यह उ वायु है। इकार रूप में चन्द्रमा है। अकार रूप में आत्मा है। हकार रूप में अग्नि और ईकार रूप में आदित्य ऊकार रूप में निहव है तथा एकार रूप में विश्व देव है।

---

[1] एव उ एव बृहस्पतिः वाक् वै बृहती तस्या एष पतिः तस्मात् उ बृहस्पतिः एष उ एव साम। एष उ वा उद्गीथः। ब्रा.उ.

[2] एष उ एव वामनीः एष हि सर्वाणि वामानि नयति,
सर्वाणि वामानि नयति य एवं वेद।
एष उ एव भामनीः एष हि सर्वेषु लोकेषु भाति
सर्वेषु लोकेषु भाति य एवं वेद।
तस्मात् उ सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव प्रशासन भूदिति
तस्मै हो वाच छा. उ.

अयं वाव लोका हा उकारो वायुः हा। इकारः चन्द्रमा
अकारः आत्मा हकारो अग्निः ईकारः आदित्यः ऊकारो निहवः
एकारो विश्वदेवाः ॥ छा. उ. 3-12

यह उ ही शुभ्र नील पीत लोहित वर्णों में सब भूतों में प्रकट है। यह अमृत और ऋक्, यजु और साम रूप है।

एष उ एव सर्वेषु एतेषु परिख्यायत इति होवाच।
एष शुक्लः, एष नीलः, एष पीतः, एष लोहितः ॥
छा. उ.

स्वरत्येवं साम एव यजुः एष उ स्वरो
यदेतत् अक्षरं एतत् अमृतं अभयं ॥ छा. उ.

कैवल्पोपनिषद में इस अक्षर को ब्रह्मा, शिव, इन्द्र के रूप में परम कान्तिमान कहा गया है।

स ब्रह्मा स शिवः स इन्द्रः।
स अक्षरः परमं स्वराट् ॥ कै. उ.

कठोपनिषद के अनुसार इस सृष्टि में जो कुछ हुआ है। जो कुछ भी है। जो कुछ भी होगा। वह सबका सब उ है। इसमें ही सब लोक आश्रित हैं। वह अन्तिम है। उसके अलावा कोई नहीं। यह अक्षर ब्रह्म ही परम सत्य है। इसको जान लेने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है[1]।

तस्मिन् लोकाश्रिता सर्वे तद् उ नान्येति कश्चन्।
ईशानो भूत भव्यस्य स एव आद्य स उ स्वः ॥ क. उ.

---

[1] एतत् हि एव अक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरम् परम्।
एतत् हि एव अक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ क. उ.
ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म। तै. ब्रा.
तथा अक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्।

मुण्डकोपनिषद में इस वर्णात्मक ब्रह्म को निष्कल श्रेष्ठ ज्योति तथा शुभ्र वर्णीय व हिरण्यमय कोश से परे की स्थिति कहा गया है। वह जगत का प्राण है। मन है। वाणी है। वह भूत, भवत तथा भविष्य है। सत्य है और ब्रह्म विद्या का मूल तत्व है[1]।

हिरण्यमये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तत् शुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः तद्
यत् आत्मविदो विदुः॥

इशोपनिषद में कहा गया है कि जो दूर है। जो निकट है। जो वाहर है वह सब 'उ' नामक ब्रह्म है। जो उसे नहीं जानते वे घोर अन्धकार में हैं।[2]

तत् एजति तत् न एजति तत् दूरे तत् अन्तिके।
तत् अन्तरस्य सर्वस्य तत् उ सर्वस्य बाह्यतः॥ मु. उ. 1-3

जो मन है। प्राण है। इन्द्रिय है। वाणी है। जिसके ज्ञान से व्यक्ति अमर हो जाते हैं। वही ब्रह्म है। वह ही उ है।

श्रोत्रस्य श्रोतं मनसो मनो
यद् वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः
प्रत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥ केनोपानिषद

माण्डूक्योपनिषद में कहा गया है कि यह ब्रह्म मात्रा प्रति मात्रा करके अकार उकार मकार रूप में सर्वत्र आत्मिक रूप में व्याप्त है तथा सब कालों में विद्यमान रहनेवाला है।

---

[1] ॐ इत्येदक्षरं इदं सर्वं तस्योपव्याख्यामं
भूतं भवत भविष्यं सर्वमोङ्कार एव॥ मु. उ.
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं
प्रोवाचताम् तत्वो ब्रह्म विद्याम्॥ मु. 1-2-13

[2] अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये विद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायारताः।

ऊँ इति एतत् अक्षरं इदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं
भूतं भवत भविष्यदिति सर्वं ओंकार एव ।।

यच्च अन्यत् त्रिकालातीतं तदपि ओंकार एव ।
सर्वं हि एतत् ब्रह्म सोऽयमात्मा ब्रह्म । अयम्
आत्मा चतुष्पाद् । सोऽयमात्माक्षरम् ॐकारोऽधि
मात्रं पादा मात्रा मात्रां पादा अकार इकार उकार
मकार इति । मा. उ.

श्वेताश्वतरोयनिषद् के अनुसार योनिगत रूप में ब्रह्म सबका उद्गम स्थान है अर्थात् महायोनि है । और परम कान्ति मान है ।

यो योनि योनिम् अधितिष्ठत्येकः ।
विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः ।। श्वे. उ. 4-10-11

ब्रह्म अलौहितं है अर्थात् लाल वर्ण से परे की स्थिति है । अत्यन्त सौम्य है । शुभ्र वर्णीय अक्षर है[2] ।

बृहद्जावालोपनिद में ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त अग्नि है । जो रूप प्रतिरूप से सव अवयवात्मक प्राणियों की अन्तर आत्मा है । यह ब्रह्माण्ड उस ज्योति का भस्म ही है ।[3]

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रति रूपो वभूव ।
एकं भस्म सर्वं भूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रति रूपो वभूव ।। बृ.जा.उ.

---

[1] तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्तात्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ।। श्वे. उ. 6-7

[2] परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते
स यो ह वै तदच्छायम् ।
शरीरं अलौहितं शुभ्रं
अक्षरं वेदयतेयस्तु सौम्य ।। प्र. उ.

[3] एव भस्म ज्योतिरिति वै याज्ञवल्क्यः । बृ.जा.उ.

गर्भोपनिषद में ब्रह्म षड़ाश्रय, षड्गुणात्मक सप्त धातुगत, त्रिपादात्मक, उभयलिंगात्मक और चार परिमाण वाला स्वरूप है।

ॐ पंचात्मक पंचसु वर्तमानं
षडाश्रयं षड्गुण योग युक्तम्।
तं सप्तधातुं त्रिमलं द्वियोनिम्
चतुर्विधाहारमयं शरीरम्॥ ग.उ.

यह ब्रह्म सप्त वर्णात्मक है। सप्त स्वरात्मक है। षट् रसात्मक है।

मधुराम्ल लवण तिक्त कटुक कषाय रसान् विन्दतीति।
षडज ऋषभ गान्धार मध्यम पंचम धैवत निषादाश्चेति
इष्टानि शब्द संज्ञा।

शुक्लः रक्तः कृष्णः धूम्रः पीतः पाण्डरः कपिलः
इति सप्त धातुकमिति। गर्भोपनिषद।

उपनिषदों में इस ब्रह्माण्ड का आभाजन्य व वर्णात्मक कहा गया है। सृष्टि का कारक मूल वर्ण को 'उ' माना गया है जिसका स्वरूप नीला है। स्वर प्रतिस्वर करके उद्गीथ होते हुए इसने समस्त की रचना की हैं[1]।

समान उ एव अयं च असौ उष्णौऽयम् उष्णौ असौ स्वर इति प्रतिस्वर इति अयम् ॐ एतत् इयम् अम् उम् च उद्गीथमुपासीत्।
छा.उ.3-2-2

अकार उकार मकार करके वर्ण ब्रह्म ही आनन्दात्मक प्रणव स्वरूप होकर समस्त का आदि कारक है।

प्रत्यगानन्दम् ब्रह्म स्वरूपं प्रणव स्वरूपं
अकार उकार मकार इति च॥ नारायण अथर्व शिरोपनिषद

---

[1] उद्गीथमेतत् परमं तु ब्रह्म
तस्मिन् त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरं च।
अत्रान्तरम् ब्रह्म विदो विदित्वा
लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः॥ श्वेताश्वतरोपनिषद्

यह ही इस दृश्य जगत और इस परे सूक्ष्म जगत में लीन अवस्था में सदैव तत्पर है तथा अपनी नीली हरी पीली लाल आभाओं से सर्वत्र स्थित है। यही स्थिति इसके प्रति रूपों की है[1]।

अजां एकां लोहित शुक्ल कृष्णां
प्रजा जनयन्ती स्वरूपाम् ।।

—✻—

4. ब्रह्म सूत्र में

ब्रह्म सूत्र में वर्णात्मक ब्रह्म का विवेचन करते हुए कहा गया है कि इस सम्पूर्ण में जो भी है वह सब ही ब्रह्म है। सर्वं खलु इदं ब्रह्म। यह ब्रह्म वर्णात्मक है। शब्दात्मक है। छन्दात्मक है। मंत्रों के रूप में इसकी वर्ण प्रकृति सर्वत्र है।

ब्रह्म मंत्रवर्णे प्रकृतम् ।
ॐ कं ब्रह्म ॐ खं ब्रह्म ।। ब्र.सू.शा.भा.

ब्रह्म ज्योति स्वरूप है। यह ज्योति स्वरूप ब्रह्म अक्षरात्मक है। समस्त विद्याओं का सार है व ब्रह्म विद्या का मूल तत्व है[2]।

---

1 उतिष्ठ पुरुष हरित पिंगल लोहिताक्षि। ना.उ.
यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः
तस्य प्रकृति लीनस्य यः परः स महेश्वरः ।। ना.उ.
नीलतोयदमध्यस्था विद्युत लेखेव भास्वरा ।
नीवार शूकवत् तन्वी पीताभास्वत्यणूपमा ।। ना.उ.

2 ज्योतिः चरणाभिधानम् ।
तर्हि त्रिवृत कतुम् एव तत् तेजो ज्योतिः शब्दम् ।
ब्रह्म ज्योतिः शब्दम् ।
वर्णा एव तु शब्दः । स्वरसेन ब्रह्मं वाधीयते ।
पादो अस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।

अतः परमेव ब्रह्म ज्योतिः शब्दमितिसिद्धम्
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं
प्रोवाचताम् तत्वो ब्रह्म विद्याम् ।। ब्र.सू.शा.भा.

वेद में वर्णित पुरुषात्मक स्वरूप अक्षर 'उ' ही है जो सम्पूण लोकों का निर्माणक और उसका स्वामी है ।

एष उ एवासाधु कर्म कारयति तं येतेभ्योः लोकेभ्योऽधो निमीषते । एव लोकाधिपतिः एषः लोकेशः । ब्र.सू.शा.भा.

इस बीजात्मक वर्ण ने ही छन्दात्मक मंत्रों के वर्ण स्वरूपों को प्रकट करते हुए अपने को अनेकों रूपों में ढाला और उद्गीथ बन गया[1] ।

मंत्रात्मक वर्ण क्रम रूप में इस उ की अनेकों आभायें हैं । जिनके अनेकों रंग हैं । जो देवताओं के रूप में हैं । परन्तु इस 'उ' नामक ब्रह्म का रंग नीले कमल की तरह ही है ।

तथा नीलं यत् उत्पलं तदानयेति
एवं इह अपि उद्गीथो य ॐकारस्तु मुपासितेति[2]
ब्र. सू. शा. भा.

ब्रह्म सूत्र और उसके भाष्यकार आदि शंकराचार्य जी के विचार में यह सब कुछ 'उ' नामक वर्ण से रचा गया है अतः सारा ब्रह्माण्ड वर्णात्मक, मत्रात्मक, छन्दात्मक तथा देवात्मक है । इस नीली आभा

---

[1] एकं बीजं बहुधा यः करोति ।
एष उ वा उद्गीथः ।
ऊं इति एतत् अक्षरं उद्गीथं उपासीत् ।।

[2] मंत्र वर्णाच्च । ब्र. रू. 44
अजां एकां लोहितशुक्लकृष्णाः
बह्वीः प्रजाः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ।।

वाले 'उ' वर्ण ने सृष्टि कर्म हेतु अपने को अनेकों रूपों में बदल लिया और व्यापक हो गया। अतः यह 'उ' जो सर्वत्र है। प्रकाशवान व प्राणवान है। जगत की वाणी है[1]।

एष उ एव भामनीरेष हि सर्वेषु लोकेषु भाति। ब्र. सू. शा. भा.

—*—

5. गायत्री दर्शन में

गायत्री दर्शन के बिना भारतीय चिन्तन अपूर्ण है। महर्षि वेद व्यास ने गायत्री का महत्व प्रकट करते हुए कहा है कि जैसे फूलों में मधु, दूध में घी और विभिन्न रसों में जल है, वैसे ही वेदों का सार[2] गायत्री है। गायत्री छन्दों की माता है। गायत्री छन्दसां मातेति[3]। छन्द का तात्पर्य आवरण या आच्छादन से है। अतः जिससे सब आच्छादित हैं या ढके हुए हैं वही गायत्री छन्द है। गायत्री मूल छन्द या आवरण है। जिसका अभिप्राय आभा के त्रिक्रमीय आवरण को प्रकट करना है। क्योंकि गाय का तातपर्य कान्ति या आभा है, और त्रि का अभिप्राय तीन अतः निर्माणक के तीन आभाक्रम को प्रकट करना गायत्री है।

---

[1] सर्वत्र हि तत् एव एकं प्रधानं।
प्राण एव ब्रह्मणः चतुर्थ पादः।
स वायुना ज्योतिषा भाति च तपति च॥ छा. उ. 3-18-4
सप्तेषु वागादिषु प्राण।
अथैक एव ज्योतिः शब्दक्रतु ज्वलन विषयः।
तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिः आयुर्होपासतेऽमृतम्॥ बृ. उ. 4-4-16
महिमान एव एषान् एते त्रयास्त्रशत्वेव देवाः॥ बृ. उ. 3-9-1

[2] यथा मधु च पुष्पेभ्योः घृतं दुग्धात् रसात् पयः।
एवं हि सर्व वेदानां गायत्री सार उध्यते॥

[3] महा नारायणोषनिषद।

गायत्री को "त्रि गमनात् इति गायत्री" कहा गया है। अस्तु गायत्री एकाक्षर ब्रह्म का त्रिपथीय स्वरूप का विवेचन है। मनु स्मृति में विचार प्रकट किया गया है कि ब्रह्म ने संसार की रचना हेतु अपने प्रत्येक चरण से संसार रूपी वेद की प्रत्येक शाखा ऋग्, यजु, साम की रचना की है।

त्रिभ्यः एव तु वेदेभ्यः
पादम् पादात् उद् दुहत्।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः
परमेष्ठी प्रजापतिः ।। मनु.स्मृ.2/77

गायत्री ब्रह्म की गतिशीलता का नाम है। शतपथ ब्राह्मण में गायत्री को हो ब्रह्म माना गया है। ब्रह्म गायत्री इति ब्रह्म वै गायत्री। छान्दोग्य उपनिषद में कहा गया है कि गायत्री के नाम से जाना गया ब्रह्म गायत्री ही है तथा ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण रचना गायत्री है।

गायत्र्याख्यं ब्रह्म गायत्री अनुगतं। गायत्री प्रत्यक् ब्रह्मैव च बोधिका। गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किंच ।।

गायत्री ब्रह्मा विष्णु और रूद्र का एकात्मक स्वरूप माना गया है।

गायत्र्येव परोविष्णुः
गायत्र्येव परः शिवः।
गात्र्येव परो ब्रह्मा
गायत्र्येव त्रयीयुतः ।।

गायत्री भूः भुवः स्वः स्वरूप से 24 वर्ण क्रमवाली है तथा ऊंकार रूप में एक अक्षरात्मक है।

भूर्भुवः स्वररिति चैव चतुर्विशत्यक्षराः तथा
गायत्री चतुरो वेदाः ॐकारः सर्वमेवतु ।। बृ.यो.या.1-4-16

गायत्री को सवितुः भी कहा गया है। सवितु आभा पुंज है। ऋग्वेद में सविता नामक ज्योति को समस्त ज्योतियों में श्रेष्ठ कहा जाता है। यह सर्व व्याप्त है तथा अपने परवर्तियों का उद्गम केन्द्र होने से योनि स्वरूप है।

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्
चित्रः प्रकेतो अजनिष्ठ विभ्वा।
यथा प्रसूता सवितुः सवाय
एषा रात्रि उषसे योनिमारैक ॥ ऋ.2-113-1

गायत्री क्रमिक वर्ण विकास को प्रकट करने की विधा है। त्रिक्रम से यह ब्रह्म के 24 चरणों की गति व स्थिति को प्रकट करने की यह एक व्यवस्था है।

निरुक्तकार ने छन्दों की भूमिका में कहा है कि छन्दों का कार्य रश्मि धारण, रश्मि निरूपीकरण व रश्मि निःसृतीकरण है। इस कार्य में गायत्री श्रेष्ठ है।

अथास्य कर्म रसदानं रश्मिभिश्च रसधारणम् यच्च किञ्चित् प्रवह्लितम् ॥

—✲—

6. त्रिक दर्शन में

वैदिक साहित्य में अनन्त एकाक्षर ब्रह्म के साथ-साथ उसके तीन प्रमुख स्वरूपों का भी वर्णन किया गया है। वही कालान्तर में त्रिदेव के नाम से ख्यात हैं। ब्रह्म के तीन स्वरूप ब्रह्म स्वयं उसकी प्रकृति एवं उसकी सृष्टि है। वेद ब्रह्म भी इसी को कहते हैं। तैत्तिरीय

ब्राह्मण में इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि जो कुछ दृश्यमान है, मूर्ति स्वरूप है वह सब ऋक् है। जो गतिमान है या ऊर्जा है वह यजु है और जो तेजोमय वर्ण है वह साम है। ब्रह्मा ने अपने इन तीन रूपों से ही सब कुछ रचा है।

ऋग्भ्यो जातं सर्वशो मूर्तिमाहुः
सर्वागतियाजुषी हैव शश्वत्।
सर्वः तेजः साम रूपंहि शश्वत्
सर्व हीदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम्॥

शतपथ ब्राह्मण में इसी भाव को प्रकट करते हुए कहा गया है कि ऋग्वेद सूर्य मण्डल है यजुर्वेद इसकी ज्वालायें हैं तथा सामवेद इसकी आभा तरंगें हैं। यही सब त्रि विद्या है और अनवरत कार्यशील है।

यदेतन्मण्डलं तपति तन्महदुक्थम् ता ऋचः स ऋचां लोकः। अथ यदेतत् अर्चिदीव्यते तन्महा व्रतम् तानि सामानि स साम्नां लोकः अथ य एव एतस्मिन् मण्डले पुरुषः सोऽग्निः तानि यजूंषि यजुषां लोकः। सैषा त्र्यैव विद्या तपति॥ श.ब्रा. 10-5

यजुर्वेद में ब्रह्म के केन्द्रात्मक तीन चक्रों से ही ब्रह्माण्ड की संरचना मानी गयी है तथा उसमें ही सबको आश्रित कहा गया है।

त्रि नाभि चक्रं अजरं अनर्वं
यत्रेमा विश्वा भुवनानि तस्थुः।
अपि तेषु त्रिषु पदेषु अस्मिन्
येषु विश्वं भुवनं आविशेश॥ य.वे.23-49

ऋग्वेद में कहा गया है कि जिसके आनन्द देने वाले अपने अक्षय तीन पदों से त्रिधातु रूप में इस ब्रह्माण्ड की रचना की है हम उस 'उ' नामक ब्रह्म को ही ज्ञान का केन्द्र मानते हैं[1]।

---

[1] एकं वा इदं विबभूब सर्वम्।
एष हि दृष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता
विज्ञानात्मा पुरुष स परेऽक्षर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते॥ प्रश्नो.उ.

यस्य त्रिधातु मधुना पदानि
अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
यस्य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्याम्
एको दाधार भुवनानि विश्वा ।। ऋ.वे.1-154-3

इस ब्रह्माण्ड की प्रत्येक संज्ञा ब्रह्म के त्रिबन्धुर[1] क्रम से ही बनी है । ज्ञात और अज्ञात सभी के जो सृष्टिमय हैं उन सबके तीन ही आयाम हैं और तीन धुरियों में ही वे अनवरत घूर्णन कर रहे हैं ।

त्रिणि त आहुर्दिवि बन्धनानि
त्रिण्यप्सु त्रिखयन्त समुद्रे । ऋ.वे.1-163-4
त्रि रोचना वरणत्रिरुँत द्यून्त्रीणि ऋ.वे. 5-69-1

इस सृष्टि में चार आयामी[2] केवल ब्रह्म है । बाकी सब त्रि आयामी ही हैं । इसका चतुर्थ रूप ही अनन्त है और तीन क्रम में बंधा गतिशील रूप ही सृष्टि है ।

त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतः
तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते
सर्वा इत्तां अनु विदुर्वसिष्ठा ।। ऋ.7-33-7

---

1 त्रिस्रो मातृः त्रि पितृन् विभ्रदेकः ऋ.वे.1-164-10
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु
त्रितेषु विन्ददमृतं निगूढम् ऋ.वे. 6-44-23

2 चत्वारि श्रंगा त्रयो अस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महा देवो मर्त्यां आविवेश ऋ.वे.

वेद के उपरान्त भी सभी चिन्तनों में ब्रह्म के इन तीन अ, इ, उ, स्वरूपों का अत्यधिक वर्णन हुआ है। मनुस्मृति में इनको अग्नि वायु और रवि कहा है। निरूक्त में इसको अग्नि वायु और सूर्य कहा हैं[1]। पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की संज्ञा दी गयी है।

योग शास्त्र में इस त्रिक् को इड़ा पिंगला और सुषुम्ना कहते हुए इनकी तीन शक्तियाँ चित् इच्छा और ज्ञान का निरूपण किया गया है। तंत्र शास्त्र में परा, परापरा तथा अपरा और वेदान्त में तन माया ब्रह्म की तीन क्रियाओं सत चित आनन्द के रूप में इनका वर्णन है। ब्रह्माण्ड की सत रज और तम प्रकृतियों के रूप में त्रिक का विवेचन करते हुए उसे सतत स्मृति में बनाये रखने के लिए त्रिपुण्ड धारण की व्यवस्था भी शास्त्रों में दी गयी है।

त्रिपुण्ड[2] धारण का तात्पर्य भारतीय दर्शन में ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति का प्रतीक है। भस्म की तीन रेखायें एक कान से दूसरे कान तक पूरी लम्बाई में लगी हुई यह प्रकट करती हैं कि हमारा ज्ञान का केन्द्र त्रिवर्णात्मक ब्रह्म है जिसमें यह सारी सृष्टि भस्मीभूत होकर आधारित है।

इस त्रिपुण्ड की पहली रेखा गार्हपत्य अग्नि, अकार स्वर, रजकण, भूलोक की आत्मा, क्रियाशील प्रकट शक्ति, ऋग्वेद, निर्माणक प्रजापति देव की प्रतीक है।

या अस्य प्रथम रेखा सा गार्हपत्यः च अकारो रजो भूर्लोकः स्वात्मा क्रिया शक्तिः ऋग्वेदः प्रातः सवनं प्रजाति देवो देवेति।

इसकी दूसरी रेखा दक्षिणाग्नि, ईकार अन्तरिक्ष वाचक, इच्छा शक्ति, तेजस्वी, यजुर्वेद रूपी व्यापनशील विष्णु देव है।

---

[1] तिस्र एव देवा इति नैरुक्ताः। अग्नि पृथिवी स्थानः।
बायुः बा इन्द्रः अन्तरिक्ष स्थान। सूर्यो द्यु: स्थानः। नि.
अग्नि वायु रविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्
दुदोह यज्ञ सिद्धर्यथम् ऋग् यजु साम लक्षणम्॥

[2] त्रिपुण्ड धारणस्य त्रिधा रेखा आललाटात् आक्षोराभ्रुवोः मध्यतश्व॥ जा.उ.

या अस्या द्वितीय रेखा सा दक्षिणाग्निः इकार स तु अन्तरिक्षम् अन्तरात्मा च इच्छा शक्तिः यजुर्वेदः माध्यन्दिनं सवनं विष्णुदेवः देवेति ।

इसकी तीसरी रेखा उकार, गहन अन्तरिक्ष वाचक, श्रेष्ठ ज्ञान शक्ति, सामवेदीय, अनन्त सूचक, परमात्मा शिव का वाचक है जो त्रिक्रम से भस्म करते हुए सृष्टि की रचना और संहार करते हैं ।

या अस्या तृतीया रेखा सा आह्वनीयो उकार तयो द्यौर्लोकः परमात्मा ज्ञान शक्तिः सामवेदः तृतीय सवनं महादेवो देवेति त्रिपुण्डं भस्मना करोति ।

त्रिपुण्ड धारण का अभिप्राय ही त्रिवर्णात्मक[1] ब्रह्म व उसकी रचना में तल्लीनता पूर्वक लगे रहना ही है ।

—✱—

7. विराट दर्शन में

विराट पुरुष के रूप में वर्णित ब्रह्म अपने पदक्रम से सबका निर्माणक है उसके तीन चरण दिव्यात्मक हैं और चौथा चरण ब्रह्माण्ड हैं ।

पुरुष एव इदम् सर्वं
यत् भूतं यत् च भाव्यम् ।
पादो अस्य सर्व भूतानि
त्रिपादस्यामृतं दिवि ।। सा.वे. 4-5-1

---

[1] अकार-उकार-मकारैः अंगन्यासः ।
हकारः सकारो मकरो त्रयं एकस्य रूपं भवति ।। हम ग्रीवोपनिषद् ।

यह माना गया है कि आदि में त्रिपादात्मक पुरुष का उद्गम हुआ और इससे विश्व निर्माणक चतुर्थ पाद का उद्गम हुआ।

त्रिपाद उर्ध्व उदैत्पुरुषः
पादो अस्ये हा भवत्पुनः
ततो विश्वं व्यक्रामत्
साशनाशनेऽभि ।।

इस विराट पुरुष को मानवीय रूप में अभिव्यक्त करते हुए इसके आदि स्वरूप को ब्राह्मण और अन्तिम रूप को शूद्र[1] कहा है। इस तरह उसके द्वारा निर्मित सृष्टि हेतु वर्ण क्रम को निर्धारित किया गया है।

ॐ ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्
बाहू राजन्यः कृतः।
उरु तदस्य यद्वैश्यः
पद्भ्यां शूद्रो अजायत् ।। य.वे.

वज्र सूचिकोपनिषय में विराट पुरुष के आभात्मक गति क्रम प्रकट करते हुए कहा है कि उसका आदि वर्ण शुभ्र है वह क्रमशः पीला लाल और कृष्ण वर्ण की आभा के रूप में प्रकट होकर जगत का कर्ता बन गया है।

ब्राह्मणः श्वेतवर्णः वैश्यः पीतवर्णः
क्षत्रियः रक्त वर्ण शूद्रः[2] कृष्ण वर्णः इति। ब.सू.उ.

रूद्राक्ष जावालोपनिषद में भी ब्रह्म के ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, और शुद्र स्वरूपों का रंगात्मक रूप प्रकट किया गया है और कहा गया है कि ब्रह्म की शुभ्रावस्था ब्राह्मण है। पीतावस्था वैश्य है रक्तावस्था क्षत्रिय है और कृष्णावस्था शूद्र हैं। इस शूद्रावस्था को ही अहंकार कहा जाता है जो सृष्टि का कर्ता है।

---

[1] ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राः च इति शिवाज्ञया।
वृक्षाः जाता पृथिव्यां तु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः।
रुद्राक्ष जाबालोपनिषद।

[2] न शूद्रे पातकं किञ्चित् न च संस्कारमर्हति। मनुस्मृति 10-12-6,

ब्राह्मणो विभृयात् श्वेतान्
रक्तान् राजा तु धारयेत् ।
पीतात् वैश्यस्तु विभृत्यात्[1]
कृष्णात् शूद्रस्तु धारयेत् ।। रु. जा.उ.

इस विराट पुरुष को यज्ञ पुरुष भी कहा जाता है ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञो वै विष्णुः कहा गया है। यज्ञ का तात्पर्य ब्रह्म कर्म से। यज्ञ ब्रह्माण्डीय क्रिया है जिसमें ब्रह्म एक से अनेकों रूपों में परिवर्तित हो कर[2] फिर अनेक से एक होता रहता है। गीता में इस अहंकार रूपी विराट पुरुष के लिए कहा गया है यह विराट पुरुष ही भोज्य है और भोजक भी है।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहम अहम औषधम् ।
मन्त्रोऽहम् अहमेवाज्यम् अहम् अग्निः अहम् हुतम् ।। गीता.9-16

—★—

8. यज्ञ दर्शन में

स्थूल से अतिसूक्ष्म ब्रह्म की क्रियाओं का ज्ञान ही यज्ञ है। 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'। कहते हुए वेद ने ब्रह्म की विविधता का ज्ञान कराया है। अतः ऋषियों ने ब्रह्म को देव मानकर और उसी के आधीन समस्त जगत को मानते हुए कहा कि समस्त जगत देवाधीन है। देवाधानीमू जगत सर्वम्। कात्यायन मुनि ने श्रौत सूत्र 1-2-2 में कहा कि यज्ञ देवता अर्थात् ब्रह्म प्राप्ति के लिए स्थूल से सूक्ष्म क्रम की ओर द्रव्यों का त्याग है।

---

[1] श्वेतास्तु ब्राह्मणा ज्ञेयाः
क्षत्रिया रक्त वर्णकाः ।
पीतास्तु वैश्या विज्ञेयाः
कृष्णा शूद्रा उदाहुता ।। रु..जा.उ.

[2] एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति

देवताम् उदिश्य हविरवमृश्य च तद् विषय सत्व त्याग इति याग शरीरम्[1] ।।

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी यज्ञ का प्रारम्भ ब्रह्म से ही माना जाता है। सृष्टि हेतु ब्रह्म का स्वतः प्रयास यज्ञ का मूल रूप है[2]।

यजुर्वेद में यज्ञ के लिए 'उन्न' का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ ब्रह्म की ओर गति करना है। यज्ञ सृष्टा का सृष्टि के लिए और सृष्टि का सृष्टा के लिए रूपान्तरित होना ही है। यज्ञ सृष्टि के भोज्य और भोजक सिद्धान्त पर आधारित है। अस्तु यज्ञ में जहां अग्नि का अन्त है वही यज्ञ का लक्ष्य है। जिसे अभोज्यावस्था अर्थात् ब्रह्म कहते हैं। इसलिए याज्ञिकों का मत है विन्दु की आहुति ओज में, ओज की आहुति मन में, मन की आहुति विज्ञान में, विज्ञान की आहुति आनन्द में, और आनन्द की आहुति परमानन्द में देनी चाहिए क्योंकि परमानन्द अन्तिम भोक्ता है भोज्य नहीं।

प्रयोग की दृष्टि से विन्दु, ओज, मन, विज्ञान, और आनन्द की अवस्थाओं को क्रमशः भूत मनुष्य, पितृ[3], देव[4] और ब्रह्म यज्ञ कहा जाता है[5]।

यज्ञ ऊर्जा या शक्ति सन्धान करने की प्राचीन वैज्ञानिक पद्यति है जहाँ क्रमोत्तर शक्ति शाली एवं सूक्ष्म ऊर्जा पाने के लिए ठोस पदार्थों को क्रमिक रूप से वर्णात्मक ऊर्जा में परिवर्तित करने की व्यवस्था है।

---

[1] एकैका देवता वहुभिः रूपैरात्मनं प्रविभज्य वहुषु योगेषु युगपदंगतां गच्छतीति परैश्च न दृश्यते अन्तर्धानादि क्रिया योगात्। ब्र.सू. 1-3-27

[2] इदं तु सकलं द्रव्यं दिवि वा भुवि वा प्रिये।
यज्ञार्थं विधिवत् सृष्टं लोकानाम् हित काम्यया ।।

[3] पितुः इति अन्न नाम। निरुक्त
अन्नम् हि रश्मिः। वाजं अन्नम् भवति।
अन्नसारं समादाय मूर्ध्नि संचिनुते सुधाम् ।। योगशास्त्र

[4] यत् दैवतः स यज्ञो वा यज्ञांगं वा तत् देवता भवन्ति।

[5] ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देव दानवाः
देवेभ्यश्च जगत् सर्वं चर स्थाण्वनुपूर्वशः ।।

यज्ञ का प्रमुख केन्द्र अग्नि अर्थात ऊर्जा है जिसका रूप घरेलू आग से लेकर ब्रह्माग्नि तक है। परशुराम कल्प सूत्र में ब्रह्माण्ड के समस्त पदार्थों को जलने वाली हवि या यज्ञ पदार्थ माना है[1]।

भट्ट वीर वामनक ने कहा है कि द्वैतात्मक प्रकृति वाले इस जगत में सभी वस्तुएं ब्रह्म के आलौकिक यज्ञ में जीवन और मृत्यु से नित्य ही आहुत हो रही हैं[2]।

निरुक्त कार ने "अथैषा यज्ञस्य" कहते हुए ऋग्वेद की निम्न ऋचा को यज्ञ के स्वरूप को प्रकट करने के लिए उद्धृत किया है।

चत्वारि श्रृंङ्.गा त्रयो अस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्तहस्तासौ अस्य।
त्रिधा बद्धो बृषभो रोरवीति।
महो देवो मृत्या आविवेश।। ऋ.वे. 4-58-3

इस वर्णात्मक ब्रह्म के चार आयाम हैं। अ, ई, उ, म्। रूप, प्रति रूप, पुनः रूप इसके तीन गति क्रम हैं। सृष्टा और सृष्टि दो इसके छोर हैं सात छन्दात्मक[3] इसकी वर्ण क्रियायें। यह त्रिधातु क्रम से बंधा हुआ अतितीव्र गति से सर्वत्र व्याप्त है।

यह व्यवस्था यज्ञ वेदी के निर्माण में भी दी गयी हैं। यज्ञ वेदी का केन्द्र अहंकार है जो ज्वलन शील है जहाँ सृष्टि की रचना और संहार होता है। जो बभ्रू वर्णीय है। वर्तमान की वैज्ञानिक भाषा में इसको "ब्लैक होल" कहा जा सकता है। इस अंहकार के बाहर अज मेखला है जो सृष्टि का कारक रक्त वर्णीय है। इसके बाद ईश मेखला है जो पीत वर्णीय है और सबसे बाहर उमेश मेखला जो शुभ्र वर्णीय है। यज्ञ कुण्ड के

---

[1] सर्वं वेद्यं हव्यम्, इन्द्रियाणि स्रुचः शक्तयो ज्वालाः,
स्वात्मा शिवः पावकः स्वयं एव होता। परशुराम कल्प सूत्र 1-26

[2] यत्रेन्धनं द्वैतवनं मृत्युरेव महा पशुः।
अलौकिकेन यज्ञेन तेन नित्यं यजामहे।। भट्ट श्री वीर वामनक

[3] 1 गायत्री, 2 उष्णिक, 3 अनुष्टुप 4 त्रिष्टुप, 5 जगती 6 बृहती।

चारों ओर जल परिखा होती है। और यज्ञाग्नि में जल छिड़कते रहने की व्यवस्था इस बात की ओर शंका प्रकट करती हैं कि कहीं प्राचीन भारत में परमाणु केन्द्र न रहे हों जिनसे सुरक्षित रहने की व्यवस्था हेतु ऐसी संरचना की जाती रही हो। उसे निम्न क्रम से ढ़का जाता हो।

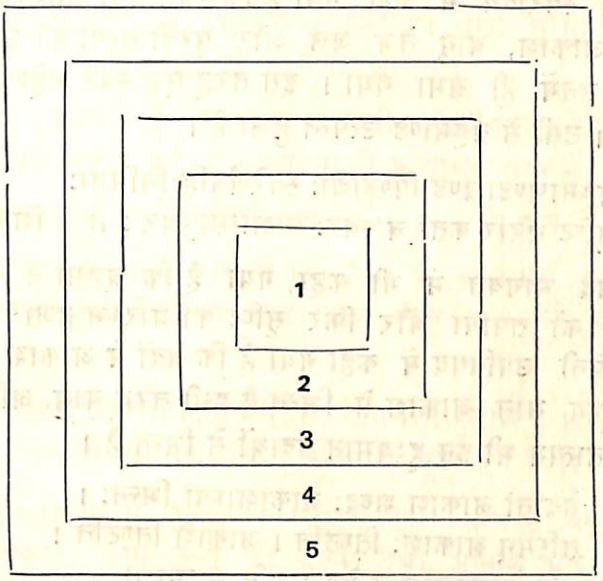

1. परमाणु केन्द्र
2. लाल रंग की परत
3. पीले रंग की परत
4. नीले रंग की परत
5. पानी का आवरण

—✱—

9. पञ्च तत्व दर्शन में

भारतीय दर्शन में तत्व मूलभूत वर्णात्मक ब्रह्म स्वरूपों का नाम है। तत्व शब्द तत्+उ+अ वर्णों से बना है। जिसका तात्पर्य उ ब्रह्म की अ तक की गति रूपों को प्रकट करना है। जिनसे बाद में चराचर का उद्गम हुआ।

शिव स्वरोदय में कहा गया है कि स्वर रूपी महेश्वर ने अपने से क्रमशः आकाश, वायु तेज जल और पृथ्वी तत्वों की उत्पत्ति की और वह उनमें ही समा गया। इस तरह एक स्वर महेश्वर सबका जनक है[1]। उसी से ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है।

ब्रह्माणण्डाखण्ड पिण्डाद्याः स्वरेणैवहि निर्मिताः
सृष्टि संहार कर्ता च स्वरः साक्षान्महेश्वर : ।। शिवस्वरोदय

श्रीमद भागवत में भी कहा गया है कि ब्रह्मा ने निर्माण के लिए वर्णों को तपाया और फिर सृष्टि का प्रारम्भ हुआ[2]। गोपाल उत्तर तापिनी उपनिषद में कहा गया है कि वेदों में आकाश शब्द का तात्पर्य दृश्य मान आकाश से भिन्न है इसी तरह वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी का तात्पर्य भी इन दृश्यमान पदार्थों से भिन्न है।

वेदानां आकाश शब्दः आकाशाम्यां भिन्नः।
तस्मिन् आकाशः तिष्ठति। आकाशे तिष्ठति।
सहि आकाशस्तं न वेद। सहि आत्मा ।।

---

[1] निरंजनो निराकारो एको देव महेश्वरः।
तस्मात् आकाश उत्पन्न आकाशाद्वायुः सम्भवः.
वायोः तेजः ततः च च आपः ततः पृथ्वी समुद्भवः।
एतानि पंच तत्वानि विस्तीर्णानि च पंचधा ।।
ताभ्यां ब्रह्माण्ड उत्पन्नं तैरेव परिवर्तते।
विलीयते च तत्रैव तत्रैव रमते पुनः ।। शि. स्व.

[2] सचिन्तयन् द्वयक्षरमेकदाभं
स्पुपाशृणो द्विर्गदितं वचो विभुः।
स्पर्शेषु यत् षोडशभेव विंश
निष्किचनानां नृप यद्धनं विदुः ।। भा. द्वि. स्क.

वायुः स्पर्श वायुभ्याम् भिन्नः। तस्मिन् वायुः तिष्ठति। वायौ तिष्ठति। वायुस्तं न वेद। स हि आत्मा।।

अग्नि इदं तेजो रूपा अग्निभ्यां भिन्नः। तस्मिन् अग्निः तिष्ठति। अग्नौ तिष्ठति। अग्निः तं न वेद। स हि आत्मा।।

रसवत्यापो रसाभ्याम् भिन्नः। तासु आपः तिष्ठान्ति। अप्सु तिष्ठन्ति। आपः तं न वेद। स हि आत्मा।।

गन्धवतीयं भूमिः गन्धभूमिभ्याम् भिन्नः। तस्यां भूमिः तिष्ठति। भूमौ तिष्ठति। भूमिः तं न वेद। स हि आत्मा।

नृसिंह पूर्व तापिनी उपनिषद में पृथ्वी को ॐकार की एक मात्रा मानते हुए उसे अकार कहा है। अतः पृथ्वी अ नामक तत्व है।

प्रणवस्य पूर्वा मात्रा पृथिवी अकारः।। नृ.पू.उ.

नरपति जय चर्या ग्रन्थ में पंच तत्वों के वर्णात्मक स्वरूप को प्रकट करते हुए कहा है कि ये तत्व लाल पीले हरे नीले और भूरे रंग के हैं।

आपः श्वेताः क्षितिः पीताः रक्तवर्णो हुताशनः।
मारुतो नीलवर्णः स्यात् आकाशो धूम्र एव च।।

इसी तरह पृथ्वी तत्व को लकार, जल तत्व को वकार अग्नि तत्व को रकार, वायु तत्व को यकार तथा आकश तत्व को हकार कहा गया हैं[1]।

याज्ञवल्क्य संहिता में इन तत्वों को विराट पुरुष के शारीरिक अंगों के रूप में प्रकट करते हुए उनके स्वभाव व वर्णों का परिचय दिया है। पृथ्वी तत्व विराट पुरुष की घुटनों से नीचे की स्थिति है अर्थात् पैर है। जल तत्व घुटनों से कमर से नीचे तक है। अग्नितत्व कमर से

---

[1] पीत वर्ण चतुष्कोणं ल मध्यं पृथ्वीपुरम्।
व मध्यं षट् दलाकारं श्वेत वारुण मण्डलम्।।
रेफ युक्तं त्रिकोण च रक्ताभं वह्नि मण्डलम्।
अष्ट पत्रं य मध्यस्थं हरितं वायु मण्डलम्।।
ह मध्यं वर्तुलाकारं धूम्राभं व्योम मण्डलम्
पञ्च तत्वेषु भेदोयं कथितः पूर्व सूरिभिः।। न.ज.

हृदय तक वायु तत्व से भौंह तक है। आकाश तत्व भौंह से ऊपर है और उसके उपरान्त विन्दु रूप में परमेश्वर अपनी प्रकृति उमा के साथ स्थित है। ये तत्व ही ब्रह्मा विष्णु महेश और उनकी प्रकृति के रूप में सर्वत्र व्याप्त हैं[1]। आज का वैज्ञानिक कुछ भी कहे प्राचीन मान्यता में ये पंच तत्व ब्रह्म के वर्णात्मक स्वरूपों के नाम हैं जो अति सूक्ष्म हैं और आज के परमाणु तत्वों से भिन्न हैं। इनके मुकावले परमाणु तो काफी स्थूल हैं। परमाणु जैसे भोज्य पदार्थों में तो ये अविनाशी तत्व सदैव रहते हैं ऐसा गर्भोपनिषद का मत है। गर्भोपषिद के अनुसार यह भोज्य शरीर तो पंच तत्व युक्त षट आश्रय और गुणयुक्त सात धातु गत तीन दोषगत दो योनि गत है।

ॐपंचात्मकं पञ्चसु वर्तमानं
षडाश्रयं षटगुण योग युक्तम्
तं सप्तधातुं त्रिमलं द्वियोनिम्
चतुर्विधाहार मयं शरीरं ॥ गर्भोपनिषद

—✱—

---

[1] पदाति जानु पर्यन्तं पृथ्वी स्थानं प्रकीर्तितम्।
आजानो पायु पर्यन्त अपां स्थानं प्रकीर्तितम् ॥
आपायो हृदयान्तम् च वह्नि स्थानं उदाहृतम्।
आहृत् मध्यात् भ्रुवोः मध्यं यावद्वायु स्थलं स्मृतम् ॥
आभ्रू मध्यान्तु मूर्द्धान्तं यावादाकाश मिष्यते।
पृथ्वीव्यां वायु मास्थाप्य मकारेण समन्वितम् ॥
ध्यायेत चतुर्भुजाकारं बह्माणं सृष्टि कारकं।
वारुणो वायु मारोच्य व कारेण समन्वितम् ॥
स्मरं नारायणं सौम्यं पीतवास सुचिस्मितम्।
वह्नौ चानिल मारोप्य रेफाक्षर सन्वितम् ॥
त्र्यक्षं च वरदं रूद्रं तरुणादित्यसम् निभम्।
मारुतं मारुत स्थाने यकारेण समन्वितम् ॥
आकाशे वायु मारोप्य हकारोपरि शंकरम्।
विन्दु रूपं महादेवं व्योमाकार सदाशिवम्।
उमार्द्ध देहं वरदं सर्व कारण कारणम् ॥

10. बहुदेव दर्शन में

भारत में अनेकों देवी देवताओं की पूजा होती है। कोई काली का उपासक है तो कोई शिव का है। इस तरह की पूजा परम्परा अति प्राचीन काल से चली आ रही है। ये परम्परायें मंत्र और तंत्र रूप में भी प्रचलित रही हैं। मत्र जहाँ रूप परम्परा का द्योतक है वहीं तंत्र प्रति रूप का उपासक है। दोनों ही अपने ढंग से अपना इष्ट देव प्राप्त कर अभीष्ट ब्रह्म की प्राप्ति का प्रयत्न करते रहे हैं। यह इष्ट नामक देव साधक का अपना वर्ण है जो परमात्मा से सम्पर्क का सूत्र है।

आज जिस ढंग से देवी देवताओं का पूजन होता है उसमें अज्ञानता अधिक है लेकिन प्राचीन काल में बहुदेव बाद सृष्टि चक्र के विवेचन की एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जो अपने में गहन ब्रह्माण्डीय रहस्यों को छिपाये हुए हैं। यह बहुदेवता का स्वरूप ही ब्रह्म द्वारा रची गयी इस समस्त सृष्टि का दैवत रूप है और उसके क्रमिक विकास को प्रकट करने की विधि है। इसीलिए सांख्य दर्शन में कहा गया है कि देवता जितने भी हैं वे सब ब्रह्म के परिवर्तित रूप के कारण ही हैं[1]।

गरूण पुराण में कहा गया है कि शिव, ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, बृहस्पति, आदि सभी देवता अनन्त ब्रह्म के सृष्टि चक्र के क्रम रूप में ही समझे जाते हैं।

गणेशं च विधिं विष्णुं शिवं जीवं गुरुं ततः।
व्यापकं च परं ब्रह्म क्रमात् चक्रेषु चिन्तयेत्॥ ग.पु.

मुण्डकोपनिषद के अनुसार एक अव्ययात्मक ब्रह्म कलात्मक रूप से इस ब्रह्माण्ड की रचना के लिए देवता प्रति देवता पुनः देवता करते हुए पचास स्वरूपों को प्राप्त होकर निर्माण करने वाली चेतन शील आत्मा से सर्वत्र व्याप्त हो गया तथा अक्षर रूप से सबको एकीकृत करने वाला वन गया।

---

[1] देवादि प्रभेदाः। सांख्य दर्शन

गता कला पञ्चदश प्रतिष्ठा ।
देवाश्च सर्वे प्रति देवतासु ।
कर्माणि विज्ञान मयश्च आत्मा
परे अव्यये सर्व एकी भवन्ति ।। मु. उ.

देव[1] का तात्पर्य प्रकाश में व्याप्त वर्ण कणों से भी है । ये देवता अग्नि आदि किसी भी रूप में हैं वे सब एक ब्रह्म से निकले हुए आभा रूप ही है ।

एकः एव अग्नि वहुधा समिद्धः
एकः एव सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः ।
एकः एव उषा सर्व मिदं विभाति
एकं वा मिदं विवभूव सर्वम् ।।

विवेक चूड़ामणि ग्रन्थ में कहा गया है कि ब्रह्म स्वयं ही ब्रह्मा विष्णु इन्द्र शिव रूपों में होकर सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो गया ।

स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयं इन्द्रः
स्वयं शिवः स्वयं विश्व मिदं सर्वम् ।। वि. चू.

यही नहीं इन समस्त दिव्यात्मक लोकों की रचना तथा भू आदि पिण्डों की रचना चाहे वह द्रव्य रूप में हों या देव रूप में इन सबको सृष्टियज्ञ के लिए ब्रह्म ने विधि पूर्वक बनाया है ।

इदं तु सकलं द्रव्यं
दिवि वा भुवि वा प्रिये ।
यज्ञार्थं विधिवत् सृष्टं
लोकानाम् हित काम्यया ।।

देवी देवताओं का विवेचन सर्वत्र ब्रह्म के द्वारा रची गई दिव्य कान्तियों के रूप में ही मिलता है । ब्रह्म इन देव आत्माओं के द्वारा ही चर अचर से सम्पर्कशील है और उनका निर्माण करता है । यही मान्यता है कि उस एकाक्षर ब्रह्म ने रूप प्रति रूप क्रम से सारी सृष्टि की रचना ऋषि, पितृ, देव के क्रम से की है ।

---

[1] देव का तात्पर्य देने वाला भी है ।

ऋषिभ्यः पितरो जाताः
पितृभ्योः देव दानवाः
देवेभ्यश्च जगत सर्वं
चरं स्थाण्वनुपूर्वशः ।।

ऋग्वेद में स्पष्ट है कि ब्रह्म ने रूप प्रतिरूप पुनः रूप के क्रम से अपनी माया से हजारों कान्तियों की रचना कर इस ब्रह्माण्ड को बनाया है।

रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव
तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय
इन्द्रो भायाभिः पुरुरूप इयते
युक्तो हि अस्य हरयः शतादशः। ऋ.वे. 6-47-18

ऋग्वेद के एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि यह सब उ नामक ब्रह्म ने अपने त्रिपाद क्रम से देव रूपी ज्योयिों को पैदा करते हुए बनाया है।

इदं त एकं पर उ त एकं
तृतीयेन ज्योतिषां संविशस्व
संवेसने तन्वम् चारुरेधि
प्रियो देवाना परमोजनित्रे ।। ऋ. वे. 10-4-56

निरुक्तकार ने भी देवताओं को वर्णात्मक ही माना है। इसलिए उन्होंने इन्द्र, अग्नि, विष्णु आदित्य आदि को स्वर कहा है यथा "स्वर आदित्यो भवति"

अतः देवताओं के रूप में सृष्टि के आदि क्रमों को प्रकट करने का विधान भारतीय वांगमय में रहा है। यहाँ लाल वर्ण ब्रह्मा हैं। पीत वर्ण विष्णु हैं। नील वर्ण शिव हैं। उसी क्रम में इनके प्रति रूप भी हैं। अकार ब्रह्मा वाचक है। इकार विष्णु वाचक है। उकार शिव वाचक है। ऋकार ऋद्धि वाचक है। लृकार सिद्धि वाचक है। एकार ऐन्द्री वाचक है। ओकार शिवा या काली वाचक है। ये ही ब्रह्म के सप्त धातु रूप में लाल, पीली, नीली, जामुनी हरी और नारंगी आभाओं के स्वरूप हैं।

ये आभा रूप तेंतीस कोटि पर्यन्त माने गये हैं। कोटि का तात्पर्य परिधि से से भी है। अतः ये ही अ से लेकर ह तक की वर्णमाला या ब्रह्म चक्र की परिधियाँ हैं, जिनकी संख्या 50 है। ये अक्ष भी कहलाते हैं। क्योंकि अविनाशी हैं और सृष्टि के केन्द्र हैं।

गायत्री छन्द मुख्य रूप से सविता देव के लिए प्रयुक्त होता है अतः सवितुः का त्रिवर्णात्मक रूप यहाँ प्रकट करते है।

सवितुः के लिए तीन वर्णात्मक चक्र है। 'स' बाह्य चक्र लाल है। 'वि' मध्य चक्र भूरा कुछ पीलेपन में और 'स' केन्द्र चक्र नीला है। सवितुः सूर्य वाचक है अतः इस तरह के त्रिवर्णीय चक्र रश्मियाँ ज्वलनशील हैं और उष्णता वाचक हैं।

—✱—

11. निरुक्त में

निरुक्तकार ने वेदों की ऋचाओं के माध्यम से उसके एकात्मक ऊर्जा सिद्धान्त और वर्णात्मक सृष्टि रचना के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। अक्षर ब्रह्म के लिए निम्न ऋचा का उदाहरण देते हुए उन्होंने स्पष्ट किया है कि जिस वर्णात्मक ब्रह्म में देवता आदि के साथ साथ समस्त ब्रह्माण्ड निर्भर है जो उसे नहीं जानता उसके लिए वेद क्या कर सकता है। लेकिन जो उसे जान जाता है वह उसमें ही रमा रहता है।

अथ एषां अक्षरस्य।
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः।
यः तत् न वेद किम् ऋचा करिष्यति
य इत् तत् विदुः त इमे समासते ।। ऋ. वे. 1-164-39

इसलिए वेदांग निरुक्त वर्ण विवेचन का शास्त्र है। सृष्टि में वर्ण ब्रह्म किस रूप में व्याप्त है। उसका रूपान्तरण तथा पुनः स्वरूपण कैसे होता है यह निरुक्त का विषय है।

निरुक्त वर्ण क्रिया को पांच ढंग से प्रकट करता है (1) वर्ण आगमन (2) वर्ण विपर्यय (3) वर्ण रूपान्तरण या लोप (4) वर्ण का द्वित्व (5) वर्ण की मूल प्रकृति।

वर्णागमो वर्ण विपर्ययश्च
द्वौ चापरौ वर्ण विकार नाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगः
तदुच्यते पंच विधं निरुक्तं ।।

निरुक्त में निघण्टु शास्त्रों में वर्णित शुद्धाभ वैदिक शब्दों का विवेचन है। निघण्टु जिसका तात्पर्य वर्ण या ब्रह्म की स्थिति को प्रकट करना है। अस्तु यह ब्रह्म निर्वचन का शास्त्र है।

निरुक्त का मत है कि सभी पद चाहे वे नाम रूप हैं या निपात रूप में हैं या उपसर्ग रूप में हैं या आख्यात रूप में हैं वे सभी धातुज* हैं। धातु ब्रह्म वाचक है अस्तु सभी वर्ण ब्रह्म से पैदा होकर उसी की प्रकृति में लीन हैं।

अथ चेत् सर्वाणि आख्यात् जानि नामानि स्युः यः कःच तत्कर्म कुर्यात् सर्वम् तत्। तत् सत्वं तथाऽचक्षीरन् ।। निरुक्त

निरुक्त को वर्ण रसायन भी कह सकते हैं। दो वर्ण रूपी तत्व किस प्रकार वर्ण रसायनिक क्रिया करके नये वर्ण रूपों का निर्माण करते हैं और नये शब्द-पदार्थ का क्या स्वरूप है यह कार्य निरुक्त का है। यह शास्त्र मूल भूत वर्ण स्वरूपों से बनने वाले रुपों तथा वर्ण विकार से बने शब्द पदार्थों का विवेचन करता है।

भवेत् वर्णागमात् हंसः
सिंहो वर्ण विपर्ययात्।
गूढोत्मा वर्ण विकृते
वर्ण नाशात् वृषोदरम्।

---

* धातुः दधातेः = जो सबको धारण करे वह धातु है।

'उ' नामक मूल वर्ण कण अहम्कार रुप लेकर सृष्टि को किस तरह प्रतिपादित करता है यह बात निघण्टु में वर्णित शुद्धाभ वर्ण रसायन पदार्थी ऊर्जा के द्वारा ही ज्ञात होती है। उदाहरण के लिए अग्नि का वर्ण विश्लेषण निम्न प्रकार से हैं।

अ+ग्+नि=अग्नि

लाल+लाल+पीला=नारंगी

ब्रह्माण्डीय नारंगी वर्ण कण पाचक और सृष्टि क्रम को रूपान्तरित करने वाले हैं यह इस वात से स्पष्ट होता है।

—✱—

12. शिक्षा दर्शन में

आत्म वर्ण को स्वर और व्यंजनों के वर्ण से संयोग कराकर ब्रह्म के साथ सम्पर्क करने की विधि को वेदांगीय शिक्षा ग्रन्थों में शिक्षा कहा गया है। तैत्तिरीय शिक्षोपनिषद में वर्ण, उसका स्वर उस स्वर की मात्रा, उसकी शक्ति या बल, उसका साम अर्थात उसका ब्रह्माण्डीय उतार चढ़ाव की गति व उसकी सन्तान या उसके द्वारा बनने वाली नई स्थिति व नये स्वरूप के निर्माण आदि को जान कर स्वयं के वर्ण का अनन्त वर्ण से सम्पर्क कराना ही शिक्षा है।

शिक्षां व्याख्यास्यायः। वर्णः स्वरः मात्रा बलम् साम सन्तानः। इत्युक्तः शिक्षाध्यायः। तै.शि.उ.ब.-1-अ-2

इसी सन्दर्भ में याज्ञवल्क्य शिक्षा में, वर्णों की कान्ति, उनकी उच्च नीच आदि अवस्थायें तथा उनके दैवत स्वरूप का वर्णन किया गया है।

शुक्ल उच्चं विजानीयात्
नीचं लोहित मुच्यते ।
श्यामं तु स्वरितं विद्यात्
अग्नि उच्चैतु दैवतम् ।
नीचे सोम विजानीयात्
स्वरिते सविता भवेत ।। या.शि.

उच्च स्वर शुक्ल वर्ण का है । नीच स्वर का रंग लाल है । स्वरित श्याम या धूसर वर्ण का है । नीच का देवता सोम है । उच्च का देवता अग्नि है । स्वरित का देवता सविता है । उदात्त स्वर का छन्द गायत्री है । नीच का छन्द त्रिष्टुभ है । स्वरित का छन्द जगती है ।

विद्यात् उदात्त गायत्र
नीचम् त्रैष्टुभ मुच्यते ।
जागतं स्वरितं विद्यात्
अतएवं नियोगतः ।। या.शि.

गान्धर्व[1] वेद में वर्णित षडजादि सात स्वरों के आधार पर कहा गया है कि गान्धार और निषाध उच्च स्वर हैं । ऋषभ और धैवत नीच स्वर हैं । पंचम षड़ज मध्यम स्वरित स्वर हैं ।

उच्चौ निषाध गान्धारौ
चीचौ ऋषभ धैवतौ ।
शेषास्तु स्वरिताः ज्ञेयाः
षड्ज मध्यम पंचमाः ।।

एक अन्य स्थल पर वर्ण कान्तियों का निर्धारण करते हुए कहा गया है कि स्वरों की कान्ति या रंग शुक्ल है । स्पर्श कृष्ण हैं । अन्तस्थ कपिल हैं । उष्ण अरुण हैं । यम नील हैं । नासिक्य हरे हैं । अनुस्वार पीले हैं । जिह्वामूलीय लाल हैं । उपध्मानीय पीले हैं । विसर्जनीय

---

[1] गान्धर्व वेदयो प्रोक्ताः सप्त षड्जादयः स्वराः ।
तदेव वेदे विज्ञाय त्रयः उच्चादयः स्वराः ।। या.शि.

'उ' नामक मूल वर्ण कण अहम्कार रुप लेकर सृष्टि को किस तरह प्रतिपादित करता है यह बात निघण्टु में वर्णित शुद्धाभ वर्ण रसायन पदार्थी ऊर्जा के द्वारा ही ज्ञात होती है। उदाहरण के लिए अग्नि का वर्ण विश्लेषण निम्न प्रकार से हैं।

अ+ग्+नि=अग्नि

लाल+लाल+पीला=नारंगी

ब्रह्माण्डीय नारंगी वर्ण कण पाचक और सृष्टि क्रम को रूपान्तरित करने वाले हैं यह इस बात से स्पष्ट होता है।

—✱—

12. शिक्षा दर्शन में

आत्म वर्ण को स्वर और व्यंजनों के वर्ण से संयोग कराकर ब्रह्म के साथ सम्पर्क करने की विधि को वेदांगीय शिक्षा ग्रन्थों में शिक्षा कहा गया है। तैत्तिरीय शिक्षोपनिषद में वर्ण, उसका स्वर उस स्वर की मात्रा, उसकी शक्ति या बल, उसका साम अर्थात उसका ब्रह्माण्डीय उतार चढ़ाव की गति व उसकी सन्तान या उसके द्वारा बनने वाली नई स्थिति व नये स्वरूप के निर्माण आदि को जान कर स्वयं के वर्ण का अनन्त वर्ण से सम्पर्क कराना ही शिक्षा है।

शिक्षां व्याख्यास्यायः। वर्णः स्वरः मात्रा बलम् साम सन्तानः।
इत्युक्तः शिक्षाध्यायः। तै.शि.उ.ब.-1-अ-2

इसी सन्दर्भ में याज्ञवल्क्य शिक्षा में, वर्णों की कान्ति, उनकी उच्च नीच आदि अवस्थायें तथा उनके दैवत स्वरूप का वर्णन किया गया है।

शुक्ल उच्चं विजानीयात्
नीचं लोहित मुच्यते ।
श्यामं तु स्वरितं विद्यात्
अग्नि उच्चैतु दैवतम् ।
नीचे सोम विजानीयात्
स्वरिते सविता भवेत ।। या.शि.

उच्च स्वर शुक्ल वर्ण का है । नीच स्वर का रंग लाल है । स्वरित श्याम या धूसर वर्ण का है । नीच का देवता सोम है । उच्च का देवता अग्नि है । स्वरित का देवता सविता है । उदात्त स्वर का छन्द गायत्री है । नीच का छन्द त्रिष्टुभ है । स्वरित का छन्द जगती है ।

विद्यात् उदात्तं गायत्रं
नीचम् त्रैष्टुभ मुच्यते ।
जागतं स्वरितं विद्यात्
अतएवं नियोगतः ।। या.शि.

गान्धर्व[1] वेद में वर्णित षडजादि सात स्वरों के आधार पर कहा गया है कि गान्धार और निषाध उच्च स्वर हैं । ऋषभ और धैवत नीच स्वर हैं । पंचम षड़ज मध्यम स्वरित स्वर हैं ।

उच्चौ निषाध गान्धारौ
चीचौ ऋषभ धैवतौ ।
शेषास्तु स्वरिताः ज्ञेयाः
षड्ज मध्यम पंचमाः ।।

एक अन्य स्थल पर वर्ण कान्तियों का निर्धारण करते हुए कहा गया है कि स्वरों की कान्ति या रंग शुक्ल है । स्पर्श कृष्ण हैं । अन्तस्थ कपिल हैं । उष्ण अरुण हैं । यम नील हैं । नासिक्य हरे हैं । अनुस्वार पीले हैं । जिह्वामूलीय लाल हैं । उपध्मानीय पीले हैं । विसर्जनीय

---

[1] गान्धर्व वेदयो प्रोक्ताः सप्त षड्जादयः स्वराः ।
तदेव वेदे विज्ञाय त्रयः उच्चादयः स्वराः ।। या.शि.

श्वेत हैं। शवल रंग हीन हैं। अनुनासिक्य अति नील हैं[1]। ये अनेक देवता स्वरूप भी हैं। सभी स्वर शुभ्र वर्णीय हैं। क से लेकर म तक व्यंजन कृष्ण रंग के हैं। शनैश्चर प्रकृति के हैं। य व र ल चार अन्तस्थ का रंग कपिल है। ये अग्नि स्वरूप हैं। श ष स ह चार उष्ण वर्णों का रंग लाल है। ये आदित्य स्वरूप है[1]।

स्वराः शुक्लाः नाना दैवत्याः येते ककारादयो मकार पर्यवसानाः कृष्णा व्याख्याताः। शनैश्चर दैवत्या चत्वारि अन्तथाः यवरलाः कपिल वर्णाः। अग्नि दैवत्या। चत्वारि उष्माणः शषसहा अरुण वर्णाः आदित्य दैवत्याः ।।

शिक्षा ग्रन्थों में एक ध्वन्यात्मक वर्ण रंगात्मक रूप में परिवर्तित हो जाता है यह स्पष्ट किया गया है। इसके लिए वर्ण की पाँच स्थितियों स्वर, व्यंजन, स्वादि, अनुस्वार, विसर्ग, पांच आश्रय, लोक ज्योति, विद्या, प्रजा, आत्मा और चार संहिता, पूर्व वर्ण, संयोजक, परवर्ण, और सन्धिवर्ण का विवेचन किया गया है और ज्ञान का केन्द्र एक मात्र वर्णात्मक ब्रह्म ही माना गया है तथा उसी के साथ सम्पर्क करने का निर्देश दिया गया है[2]।

—★—

---

[1] स्वराः शुक्लाः। स्पर्शाः कृष्णाः। कपिलाः अन्तस्थाः।
उष्माणोऽरुणाः। नीलाः यमाः। हरिताः नासिक्याः।
पीतो अनुस्वारः। रक्तो जिह्वामूलीयः। पीतः उपध्मानीयः
श्वेतो विसर्जनीयः। शवलोरंगः। अतिनीलो अनुनासिक्यः ।।

[2] य एकः वर्णो वहुधा शक्ति योगात्
वर्णान् अनेकान् निहितार्थो दधाति।
विश्वेति चान्ते विश्वमादौ स देवः
स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु ।।

13. सूर्य सिद्धान्त में

वैदिक दर्शन में सूर्य ब्रह्म की व्यापनशील स्थिति है जो खगोलीय पिण्डात्मक सूर्य से भिन्न है। वैदिक सूर्य तो विभिन्न कान्तियों से समस्त भूतों में समाया हुआ उनकी आत्मा है।

चित्रं देवानां उदनीकं
चक्षु मित्रस्य वरुणस्य अग्ने।
आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्यः आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।। ऋ.वे. 1-15-1

इस अनन्त सूर्य के रूप में ही उस व्यापक 'उ' देव की रश्मियाँ प्रकट होती हैं। चराचर उन्हीं का अधिग्रहण करता है।

उद् उत्यं जातवेदसम् वहन्ति केतवः।
दृशे विपवाय सूर्यम् ।। 1-50-1

सूर्य पवित्र है। 'सूर्यः पवित्रीम् उच्यते'[2]। पवि वृत या चक्र है। त्रि का तात्पर्य तीन। अतः पवित्री या पवित्र का तात्पर्य त्रिवर्णात्मक चक्र से है। सूर्य ब्रह्म की तीन मूल आभा या कान्तियों का पुंज है।

इसलिए मैत्रेय उपनिषद में सूर्य को ब्रह्म की हिरण्यात्मक स्थिति कहा गया है। सूर्यात्मक स्थिति से ही ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है। यह धारण वहाँ दी गयी है।

हिरण्ययेन पात्रेण सत्यस्य अभिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽहम् ।। मैं.उ. 6-35

सूर्योपनिषद में इस चराचर की उत्पत्ति का कारण सूर्य ही है। यह सब उससे उत्पन्न होकर उसी में लीन हो रहा है।

---

[1] सूर्यः आत्मा इति उदितस्य।

[2] रश्मयः पवित्रम् उच्यन्ते। निरुक्त

सूर्यात् भवन्ति भूतानि
सूर्येण पालितानि तु ।
सूर्येलयं प्राप्नुवन्ति
यः सूर्यः सोऽहमेव च ।। सू.उ.

आचार्य शौनक ने बृहद्देवता नामक ग्रन्थ में वर्णन किया है कि यह सारी सृष्टि सूर्य से ही वनी है और उसी में लीन हो रही है । यह सूर्य ही समस्त की योनि है । प्रणव स्वरूप अक्षर है । अव्यय है और सास्वत है[1] ।

सूर्य सिद्धान्त नामक ज्योतिष ग्रन्थ में कहा गया है कि आदित्य आदि भूत है और उसका सृष्टि क्रम सूर्य है । उसकी ज्योति की व्यापकता सविता है ।

आदित्यो हि आदि भूतत्वात्
प्रसूत्या सूर्य उच्यते ।
परं ज्योतिः तमः पारे
सूर्यो अयं सवितेति च ।।

बृहत् योगि याज्ञवल्क्य में सविता को सब विचारों व भावों का प्रसारक कहा गया है तथा भाव व विचारों का प्रेरक भी कहा गया है ।

सविता सर्वभावानां
सर्वं भावांश्च सूयते ।
सवनात् प्रेरणाश्चैव
सविता तेन चोच्यते ।। बृ.यो.या. 9-55

---

[1] भवद भूतं भविष्यं च जंगमम् स्थावरं च यत् ।
अस्यैकै सूर्यमेवैकं प्रभवं प्रलयं विदुः ।।
असतश्च सतश्चैव योनिरेषा प्रजापतिः ।।
तदक्षरं चाव्ययं च यच्चैतत् ब्रह्म शाश्वतम् ।।
कृत्वैव हि त्रिधात्मानमेषु लोकेषु तिष्ठति ।
देवान् यथा पथं सर्वान् निवेश्य स्वेषु रश्मिषु ।।

सूर्य पुराण में सूर्य को त्रि विद्या के रूप में ऋक्, यजु, साम, कहा गया हैं[1]।

मत्वा सूर्यं परं धामं
ऋक् यजु साम रूपिणम् ।।

आदित्य से भूमि, जल, ज्योति, वायु, आकाश आदि पांचों तत्वों का उद्गम हुआ है। आदित्य सबका अन्तःकरण है।

आदित्यात् भूमिः जायते। आदित्यात् आपो जायते। आदित्यांत् ज्योतिः जायते। आदित्यात् वायुः जायते। आदित्यात् व्योमः जायते। आदित्यः अन्तः करणः। सू.उ.

आदित्य, मित्र, अर्यमण, वरुण, भग, दक्ष, स्वर, प्रश्नि, नाक, गौ, नभ, विष्टव आदि सभी सूर्य वाचक नाम हैं। तथा सभी कान्ति वाचक भी है[2]।

छान्दोग्य उपनिषदमें सूर्य को ॐकार कहा गया है। यह नादात्मक है इसकी दो स्थितियां हैं। आभाओं का संकीर्णन और विकीर्णन। अपने इस कार्य के कारण ही वह रवि कहलाता है। रवि को नाद ब्रह्म भी कहते हैं। इस नाद ब्रह्म की एकात्मक मूल कान्ति शुभ्र है।

हिरण्यमये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तत्शुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः तद् यदात्मविदो विदुः।। मु.उ. 2-9

---

[1] ऋग्भिः पूर्वाह्ने दिवि देव ईयते
यजुर्वेद तिष्ठति मध्य अह्नः।
सामवेदे नास्तमये महीयते
वेदैरशून्यः त्रिभिरेति सूर्यः।।

[2] स्वर आदित्यो भवति। प्रश्नि अदित्यो भवति। गौः आदित्यो भवति। नभ आदित्यो भवति। निरुक्त

र्य[1] सिद्धान्त के विषय में महामोहापाध्याय डा. गोपीनाथ कविराज ने भारतीय संस्कृति एवं साधना भाग-1 नामक पुस्तक में लिखा है कि सूर्य विज्ञान वर्णात्मक है। मूल वर्ण एक है। सृष्टि कर्म हेतु उसके अनन्त रूप हैं। सूर्य विज्ञान के मूल सिद्धान्त को समझने के लिए अवर्ण, शुक्ल वर्ण, मौलिक विचित्र वर्ण, यौगिक विचित्र उपवर्ण को समझना आवश्यक है। विशेष रूप से अन्त के तीनों वर्णो को जानना जरूरी है।

यजुर्वेद 18/40 में शुक्ल वर्ण को सुषुम्नः[2] भी कहा गया है। मौलिक विचित्र वर्ण में पिंगला और इड़ा आते हैं। यौगिक विचित्र उप वर्ण में इन तीनों अर्थात सुषुम्ना, पिंगला, इड़ा से बनने वाले समस्त वर्ण हैं। शास्त्रों में सुषुम्ना का रंग नीला, पिंगला का पीला और इड़ा का लाल कहा गया है। ये वर्ण वाचक भी है। अस्तु सूर्य सिद्धान्त भी इस सृष्टि को वर्ण संघर्ष जन्य मानकर एकात्मक ब्रह्म सिद्धान्तवादी है

—✱—

14. ज्योतिष दर्शन में

ज्योतिष निर्माणक एक वर्ण के अनेकों रूपों का अध्ययन है। यह वर्ण इस ब्रह्माण्ड में चाहे पिण्ड स्वरूप में है या ज्योति स्वरूप में उन सबका अध्ययन ज्योतिष है।

---

[1] अयं वेनः चोदयत् पृश्निगर्भा
ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने।
इममपां संगमे सूर्यस्य
शिशुं न विप्रा मतिभिः रिहन्ति॥

[2] सुषुम्नः सूर्य रश्मिः। य. वे. 18-40

ज्योतिष शास्त्र के महान आचार्य भास्कराचार्य ने ज्योतिष शास्त्र को वेद ब्रह्म का नेत्र कहा है। वेद वर्ण शास्त्र है। ज्योति शास्त्र है। ब्रह्म शास्त्र है। क्योंकि वेदों में स्पष्ट रूप से त्रिवर्णात्म ज्योति ब्रह्म का विवेचन किया गया है।[1]

स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत् त्रिवर्तु ज्योतिः
स्वमिष्ट यस्ये ।। ऋ. वे. 7-26-2

ये तीनों ज्योतियाँ अग्नि वायु और सूर्य नाम से जानी जाती हैं। इन तीनों से ही ऋक् यजु साम वेदात्मक सभी विद्याओं का उद्गम हुआ है।

स इमानि त्रिणि ज्योतिष्य अधिताय। तेभ्यः तप्तेभ्यः त्रयो बेदा अजायन्त। अग्ने ऋग्वेदा वायोः यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः ।।

यह ज्योति अग्नि सूर्य आदि अनन्त रूपों में होते हुए भी एक है। क्योंकि ये सब एक ही से पैदा हुए हैं।

एक एव अग्निः बहुधा समिद्धः
एक एव सूर्यो विश्वमनु प्रसूत :।
एक एव उषा सर्व इदं बिभाति
एकं वा इदं विबभूव सर्वम् ।। ऋ.वे.6-58.2

सामवेद में कहा गया है कि उस एक ज्योति द्वारा निर्मित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसका भोज्य है। समस्त ब्रह्माण्ड उस ज्योति से निर्मित होकर क्रमशः उसी में विलीन हो जाता है। हम उस ब्रह्म को पृथ्वी, अन्तरिक्ष, दिव, नाक, स्वर, ज्योति, क्रम से सर्वत्र प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि यह सब कुछ ज्योतिमय है[2]।

---

[1] शब्द शास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषी
श्रोतयुक्तं निरुक्तं च काव्य करौ।
यास्तु शिक्षाऽस्य वेदस्य सा नासिका
पादपद्म द्वयं छन्द आद्यैः बुधैः ।। भास्कराचार्य

[2] सूर्य ब्रह्म समः ज्योतिः।
शुक्रं ज्योतिश्च चित्रः ज्योतिश्च सत्यः ज्योतिः च ।। य.वे. 17-70

त्रिधातु अर्को रजसो विमानो
अजस्त्रः ज्योतिः हविः अस्मि सर्वम् ।। सा.वे
पृथिव्याऽहम् उत् अन्तरिक्षम्
अन्तरिक्षात् दिवं आरुहम्
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर ज्योतिः अगामहम् ।।
य.वे. 17-67

ज्योतिस् शब्द द्युत् धातु में इसुन् प्रत्यय के दस्य आदेश से बनता है। इसका तात्पर्य प्रकाश, प्रभा, दीप्ति, चमक, आकाशीय संसार यथा सूर्य, चन्द्र, अग्नि, विद्युत, वर्ण ब्रह्म से है। इसी ज्योतिष शब्द पर जब अच् प्रत्यय लगाया जाता है तो उससे ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान होता है। जिसको वेदांगीय ज्योतिष विद्या भी कहते हैं। इसके दो भाग हैं। 1. गणित ज्योतिष। 2. फलित ज्योतिष। गणित भाग ब्रह्म ज्योति का गणनाशास्त्र है। तथा फलित भाग उस ब्रह्म ज्योति के प्रभावों का अध्ययन है।

भास्कराचार्य के अनुसार व्यक्त और अव्यक्त रूप में ज्योतिष साकार और निराकार ब्रह्म का स्वरूप ही है। वीज गणितीय सिद्धान्त प्रति पादित करते हुए उन्होंने कहा है कि जिस तरह प्रलय काल में समस्त सृष्टि ब्रह्म में समा जाती हैं उसी तरह सारी गणित शून्य से विभाजित होकर उसी में समा जाता है। यह सृष्टि संख्यात्मक है और ब्रह्म वर्णात्मक। वर्ण का संख्या पर संख्या का वर्ण पर प्रभाव अवश्यम्भावी है।

अस्मिन् विकारखहरे न राशावपि
प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु।
बहुष्वपि स्याल्लय सृष्टि काले
अनन्ते च्युते भूतगणेषु यद्वत् ।। भास्कराचार्य

वर्णात्मक अव्यक्त राशियों के लिए कल्पित मान व्यवस्था का प्रयोग करने का परामर्श भी उन्होंने दिया है।

यावत्तावत् कालको नीलकोऽन्योवर्णः पीतो लोहितश्च ददाद्याः।
अव्यक्तानां कल्पित मान संज्ञात्संख्यानं कर्तुमाचार्यवर्यैः ।।
भास्कराचार्य

ज्योतिष का व्यक्त स्वरूप जातक[1] उसकी राशि उसका नक्षत्र, उसका लग्न, चन्द्र, सूर्य, व अन्य ग्रहों[2] की स्थिति व परिवेश है तथा अव्यक्त रूप में जातक का वर्ण और उसके परिवेश में उसके वर्ण का सम्पर्क से है।

आचार्य वाराह मिहिर ने ज्योतिष शास्त्र को तीन भागों में वर्णीकृत किया है।

1 सिद्धान्त ज्योतिष—पिण्डात्मक सृष्टि का स्वरूप गतिक्रम तथा स्थिति की गणना है।

2 संहिता—सृष्टि का स्वभाव, संचार, विकार और उसका वर्ण स्वरूप निर्धारण है।

3 होरा—ब्रह्माण्डीय अन्य पिण्डों के वर्णों का प्राणियों के जीवन पर प्रभाव[3] है।

ब्रह्माण्डीय पिण्ड किसी भी रूप में भी है, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह, आवान्तर ग्रह, निहारिका या धूमकेतु इन सबको प्राचीन भारतीय ज्योतिष विदों ने ग्रह की संज्ञा दी है। ग्रह का तात्पर्य ग्रहण करने और कराने से है। किस पिण्ड से कौन किस रूप में कोई वस्तु कितना ग्रहण कर रहा है और उसे कितना ग्रहण करा रहा है। यह भारतीय ज्योतिष का मुख्य विषय रहा है। सुदूर स्थित पिण्डों से केवल वर्णात्मक ज्योति ही ग्रहण की जा सकती है तथा करायी जा सकती है। इस हेतु जैमिनी सूत्र में कहा गया है कि समस्त राशियां अपने भाव वर्णों से युक्त हैं।

सर्वत्र सवर्णाभावाराशयश्च।

---

[1] स्वरूपात्मक पिण्डादि।

[2] ग्रहण करने और कराने वाली स्थितियां।

[3] ज्योतिः शास्त्रमनेक भेद विषयं स्कन्ध त्रयातिष्ठितम्
तत्कार्तस्न्योपनयस्य नाम मुनिभिः संकीर्यते संहिता।
शास्त्रे अस्मिन् गणितेन या ग्रह गतिस्तन्त्राभिधानस्वसौ
होरान्यो अंगविनिश्च यश्च कथितः स्कन्ध तृतीयोपरः॥

अवकहड़ा चक्र के अनुसार प्रत्येक नक्षत्र चार वर्णो का है। प्रत्येक राशि के लिए नौ वर्ण है। राशि का ग्रह भी नौ वर्णो से युक्त होता है। इस राशि चक्र का पिण्ड या जातक एक वर्ण का होता है। इस एक वर्ण के आधार पर उसका नामकरण होता है। मुहूर्त चिन्तामणि नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि व्यक्तिगत पिण्ड का ब्रह्माण्डीय स्वरूपों के साथ व्यवहार हेतु नामकरण आवश्यक है। शुभ अशुभ आदि समस्त स्थितियों का ज्ञान व्यक्तिगत वर्ण से ही किया जा सकता है।

नामाखिलस्य व्यवहार हेतुः
शुभा वहं कर्म सुभाग्य हेतुः।
नाम्नैव कीर्ति लभते मनुष्यः
ततः प्रशस्त खलु नामकर्ण ।। मुहूत चिन्तामणि।

अवकहड़ा चक्र के अनुसार वर्णात्मक ज्योतिष का स्वरूप

नक्षत्र	वर्ण	वर्णात्मक कान्ति	राशि
अश्विनी भरणी कृतिका	चू चे चो ला ली लू ले लो अ	लाल	मेष
कृतिका रोहणी मृगशीर्ष	ई उ ए ओ वा वी बु वे बो	शुभ्र	वृष
मृगशीर्ष आद्रा पुनर्वसु	का की कु घ ङ छ के को ह	पीत	मिथुन
पुनर्वसु पुष्य अश्लेषा	ही हू हे हो डा डी डू डे डो	शुभ्र	कर्क

नक्षत्र	वर्ण	वर्ण कान्ति	राशि
मघा पूर्वा फाल्गुनी उ. फा.	म मी मू मे मो टा टी ट टे	रक्त	सिंह
उ. फा. हस्त चित्रा	टो पा पी पू ष ण ठ पे पो	पीत	कन्या
चित्रा स्वाति विषाखा	रा री रू रे रो ता ती तू ते	शुभ्र	तुला
विषाखा अनुराधा ज्येष्ठा	तो न नी नू ने नो या यी यू	रक्त	बृश्चिक
मूल पूर्वाषाढ़ा उ. षाढ़ा	ये यो भ भी भू ध फ द भे	पीत	धनु
उ. षाढ़ा श्रवण धनिष्ठा	भो ज जी ख खू खे खो गा गी	कृष्ण	मकर
धनिष्ठा शतभिषा पूर्वा भाद्र पदा	गू गे गो सा सी स् से सो दा	कृष्ण	कुम्भ
पू. भा. उ. भाद्रपदा रेवती	दा इ घ झ ञ दे दो चा ची	कृष्ण	मीन

अवकहडा चक्र के अनुसार मेष सिंह और वृश्चिक राशियाँ रक्त वर्ण से आवेशित हैं। मिथुन कन्या और धनु पीले वर्ण से व वृष कर्क तुला शुभ्र वर्ण से तथा मकर कुम्भ मीन काले वर्ण से आवेशित राशियाँ हैं।

मेषे सिहे वृश्चिके रक्त वर्णो
कुम्भे कन्या चापयो पीत वर्णः।
भद्रे कर्के तौलिके श्वेत वर्णो
नक्रे कुम्भौ मीनके कृष्ण वर्णः।

नरपति जय चर्या ज्योतिष ग्रन्थ में उद्धृत ब्रह्म यामल के अनुसार अ से लेकर अः तक के सोलह स्वरों में पांच प्रमुख हैं। अ, इ, उ, ए, ओ। इन पांच स्वरों के पांच देवता हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य और चन्द्र। इनकी पांच कलायें हैं। निवृति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति व अति शान्ति। इनकी पांच शक्तियाँ हैं। इच्छा, ज्ञाना, प्रभा, श्रद्धा, और मेधा। इन पांच स्वरों के मायादि के कारण पांच चक्र हैं। चतुरस्र, अर्द्ध चन्द्र, त्रिकोण, षट्कोण व वर्तुल। इनके पांच महा भूत हैं। क्षिति, जल, पावक, गगन तथा समीर। इनके पांच काम बाण हैं। शोषण, मोहन, दीपन, सन्तापन व प्रमथन। इनकी पांच अवस्थायें हैं। बाल, कुमार, यौवन, जरा व मृत्यु इनकी पांच स्थितियां हैं। पिण्ड, पद, रूप, रूपातीत व निरंजन। इनके पांच विषय हैं। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श व शब्द इनके पांच रंग हैं। लाल, पीला, नीला, नारंगी व जामुनी। इनकी आठ विधायें हैं। मात्रा, वर्ण, जीव, ग्रह, राशि, नक्षत्र, पिण्ड व योग[1]।

---

[1] अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ख्याता ये ब्रह्म यामले।
मात्रादि भेद भिन्नानां स्वराणां षोडशोदयन्॥
मातृकायां पुरा प्रोक्ताः स्वराः षोडश संख्यया।
अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः॥
तेषां द्वौ अन्तिमौ अं अः त्याज्यौ चत्वारश्च ऋ ॠ ऌ ॡ नपुंसकौ।
शेषां दश स्वरास्तेषु स्यादेकैको द्विके द्विके।
ज्ञेया तत्र स्वरा आद्या ह्रस्वा (अ. इ उ ए ओ) स्वरोदये।
अकराद्याः स्वराः पञ्च ब्रह्माद्याः पञ्चदेवताः।
विवृत्याद्याः कलाः पञ्च इच्छाद्याः शक्ति पंचकम्॥

इन अकार आदि स्वरों की राशियां हैं। अकार मेष, सिंह, वृश्चिक राशि को प्रकट करता है। इकार मिथुन, कर्क, कन्या राशि का सूचक है। उकार धनु और मीन का प्रतीक है। एकार वृष और तुला का द्योतक है। ओकार मकर और कुम्भ राशियों को प्रकट करता है।

अस्वरो मेष सिंहालि इः कन्या युग्म कर्कटाः।
उकारस्य धनुर्मीनाः ए स्वरस्य तुलावृषौ ॥
ओकारे मृग कुम्भौ च राशीशाः च ग्रह स्वराः।
स्वराद्यः स्थापयेत् खेटान् राशेर्यो यस्य नायकः ॥
अकारे सप्त ऋक्षाणि रेवत्यादि क्रमेण च।
पञ्च पञ्च इकाराद् उ, ए, ओ ऋक्ष स्वरोदयः ॥

ब्रह्म यामल के अनुसार वर्णित स्वरों की राशियों का चक्र।

स्वर	अ	इ	उ	ए	ओ
राशिक्रम	1 5 8	3 4 6	9 12	2 7	10 11
राशि ग्रह	सू मं	च बु	बृ	शु	श

[1] मायाद्या चक्र भेदाश्च धराद्य भूत पंचमम्।
शब्दादि विषयास्ते च काम बाणा इतीरतः ॥
पिण्डं पदं तथा रूपं रूपातीतं निरंजनम् ॥
स्वर भेद स्थितं ज्ञानं ज्ञायते गुरतः सदा ॥
अकाराद्याः स्वराः पञ्च तेषां अष्टविधास्त्वमी।
मात्रा वर्णो ग्रहो जीवो राशिर्भ पिण्ड योगकौ ॥
आपः श्वेताः क्षितिः पीता रक्त वर्णो हुताशनः।
मारूतो नीलवर्णः स्यादाकाशो धूम्र एव च ॥

नक्षत्र स्वर चक्र

स्वर	अ	इ	उ	ए	ओ
नक्षत्र	रे.अ.भ. कृ.रो.मृ. आ.	पुन· पु. श्ले. म. पूफा.	उफा. ह. चि. स्वा. वि.	अनु.ज्ये मू.पूषा. उषा.	श्र.ध. श. पूभा. उभा.

बृहज्जातक में वाराह मिहिर ने बारह राशियों का वर्ण या रंग भी दिए हैं। उन्होंने उल्लेख किया है कि मेषादि क्रम से राशियाँ लाल सफेद, हरी, पाटल, धूम्र पाण्डु, चित्र, कृष्ण, स्वर्णिम, पीली, कबरी, भूरी और शुभ्र हैं।

रक्तः श्वेतः शुकतनुमिभः पाटलो धूम्रपाण्डुः ।
चित्रः कृष्णः कनक सदृशः पिंगलः कुर्बुरश्च ।।
बभ्रु स्वच्छः प्रथम भवनाद्येषु वर्णाः प्लवत्वं ।
स्वाम्याशाख्यं दिनकर युतात्भाद्वितीयं च वेशिः ।।
बृ. जा. 1-20

पुनः ग्रहों के रंगों का भी बृहज्जातक में वर्णन किया गया है। सूर्य का वर्ण गहरा लाल, चन्द्र, सफेद, मंगल लाल, शुक्र सफेद, बुध हरा, गुरु भूरा तथा शनि कृष्ण वर्ण का है।

रक्तः श्यामो भास्करो गौर इन्दुः
नात्युच्चांगो रक्त गौरः च वक्रः ।
दूर्वा श्यामो ज्ञो गुरुर्गौर गात्रः
श्यामः शुक्रो भास्करि कृष्णदेहः । बृ. जा. 2-4

ताजिक नील कण्ठी में भी बारह राशियों का वर्ण क्रम दिया गया है। मेष लाल और पीला, वृष श्वेत, मिथुन, हरा, कर्क लाल, सिंह पीला, कन्या पिंगल, तुला, शुभ्र, बृश्चिक वहुरंगा, धनु स्वर्णिम, मकर पिंगल, कुम्भ बहुरंगा, और मीन भूरा है। अ. 1: 2 से 13 तक

इसी तरह नक्षत्रों को भी रंगात्मक या वर्णात्मक ज्योति स्वरूप कहा गया है। नक्षत्र शज्द के पर्याप ऋक्ष और स्तृभि भी हैं। इनको आकाशीय वर्ण पुंज भी कहते हैं। क्योंकि ये केवल सूक्ष्म वर्ण तरंगों से ही पृथ्वी के साथ सम्पर्कशील हैं।

अमीव ऋक्षाः निहितास उच्चाः
पश्यन्तो द्याम् इव स्तृभिः ।। ऋ. वे. 1-24-10

वास्तव में देखा जाय तो पिण्ड, ग्रह, राशि, नक्षत्र, के रूप में वर्णित ज्योतिष शात्र सृष्टि के वर्णात्मक स्वरूप को ही प्रकट करता है। ज्योतिष में वर्णित सात मुख्य ग्रह सात स्वर ही हैं। 1-अ, 2-इ, 3-उ, 4-ऋ, 5 लृ, 6-ए, 7 ओ, । ये सात ग्रह ही अष्टक वर्ग ज्योतिष में परिगणित किए जाते हैं। आठवां ग्रह राहू अं तथा नवां ग्रह केतु अः का सूचक है। ये किसी भी वर्ण की अन्तिम अवस्थायें हैं।

ये मुख्य ग्रहात्मक स्थिति से भिन्न माते जाते हैं। फलित ज्योतिष में सूर्य चन्द्र और लग्न की स्थिति मुख्य मानी जाती है। सूर्य ब्रह्म रूप में ॐकार वाचक एकात्मक ज्योतिष है। चन्द्र प्रकृति रूप में द्वैत व लग्न पुत्र रूप में त्रैत्र ज्योतिष है। शिव संहिता में कहा गया है कि चन्द्र विन्दुमय है और सूर्य रज मय है इन दोनों के मेल से शरीर सम्भव है अतः दोनों का संयुक्त रूप धारण करना चाहिए।

विन्दुः विधुमयोज्ञेयो रजः सूर्यमयः तथा
उभयोर्मिलन कार्यं स्वशरीरे प्रवेशयेत्। शि. सं.

सूर्य, चन्द्र व लग्न से बना यह त्रैत ज्योतिष ही गायत्री रूप में ब्रह्माण्ड का वाचक है यह वह त्रिकोण जहाँ सब केन्द्रित हैं।

रमल ज्योतिष का भी मूल आधार वर्ण क्रम ही है। रमल शास्त्र में वर्णों की संख्या आदम वाचक है जिससे रमल शास्त्र की उत्पत्ति हुई है। रमल में वर्णों की मात्रा बिन्दु रूप में है जिसमें 16 स्वरात्मक हैं और 25 व्यंजन हैं तथा 4 तत्व इन सबसे मिलकर 45 वर्णों का शास्त्र रमल है।

रमल का मुख्य सूत्र :—

अ व ज द हौ व ज हुत्ती क ल म न स ⚌ अ ⚌
फ स क र श त स ⚌ अ ⚌ ख ज ⚌ ज ग ज्ज ।

इस सूत्र का स्पष्टीकरण निम्न प्रकार किया गया है। अकार से सारे स्वर। ब प फ भ से पवर्ग। ज च छ से चवर्ग। द ध ड ढ से तवर्ग। क ख ग घ से कवर्ग तथा त ठ से टवर्ग तथा शकार से 4 तत्व।

अत्र अकारे षोडश स्वराज्ञेया। तथा अत्र बपफभाः एक रूपाः (पवर्गः) जचछाः एक रूपाः (चवर्गः) दधडढाः एक रूपाः (तवर्गः) पुनः कखगघः एक रूपाः (कवर्गः) तथा तथटठाः एक रूपाः (टवर्गः) एवं सर्व वर्णानाम् संख्या ज्ञातव्या। अथ यतः पंच चत्वारिंशत् संख्येषु चादमेति नाम स्फुटं भवति। अकारस्य एकः। दकारस्य चत्वारः मकारस्य चत्वारिंशत्। सर्वेषाम् संकलने कृते जाता पंच चत्वारिंशत्। तत्र चत्वारि शषसह तत्वानि अग्नि वायु जल पृथ्वीरूपाणि।

उपरोक्त तत्थ्यों से स्पष्ट है कि ज्योतिषशास्त्र मूलतः वर्णात्मक ब्रह्म का शास्त्र है।

—✱—

15. योग दर्शन में

भारतीय दर्शन में योग सृष्टि का सृष्टा के साथ सम्पर्क का विधान है। जिस सम्पर्क सूत्र से प्रत्येक पिण्ड उस सृष्टा से जुड़ा है उसे योग कहते हैं। "युज्यते असौ योगः"। यजुर्वेद में योग के लिए कहा गया कि हमें ब्रह्माण्डीय शक्ति हेतु स्वयं को ब्रह्म के साथ-साथ उसकी समस्त विधाओं से जोड़ लेना चाहिए।

युज्जानः प्रथमं मनः तत्वाय सविताधियः ।
स्वर्ग्याय शक्त्या । युज्जते मनः । युज्जते धियो ।
युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं । य.वे.

महर्षि पातंजलि ने योग के विषय में कहा है कि ब्रह्माण्ड कर्ता के साथ तल्लीन हो जाना ही योग है । अतः लगन पूर्वक ब्रह्माण्ड कर्ता की शक्ति प्राप्त करना ही योग हैं[1] । योग बीज में कहा गया है कि अनवरत ब्रह्म उर्जा की खोज में लगे रहना ही योग है ।

योगेन योगो ज्ञातव्यो योगात् योगः प्रर्वतते ।
यो अप्रमत्तस्तु योगेन स योगी रमते चिरम् ।। योग बीज

योग वसिष्ठ में कहा गया है कि जो इस संसार में सर्वत्र व्याप्त है उसके बारे में जानकारी प्राप्त करना योग है[2] ।

शिव संहिता में कहा गया है कि जब वर्ण कणों अर्थात् 'अहम्' को प्रकाश कणों अर्थात् 'रज'[3] कणों से संघर्ष कराया जाता है तभी श्रेष्ठ शक्ति प्राप्त होती है । यही साधनावस्था है ।

अहं विन्दु रजः शक्तिः उभयोः मेलनं यदा
योगिनां साधनावस्था भवेद् दिव्यं वपुः तदा ।। शि. सं.

योग में कुण्डलिनी का स्थान महत्व पूर्ण है । कुण्डलिनी एकाक्षर ब्रह्म का सृष्टि हेतु वर्णात्मक चक्र है । महायोग विज्ञान में कुण्डलिनी को वर्ण माला माना गया है ।

शब्द ब्रह्मयी देवी एकानेकाक्षरा कृतिः ।
शक्तिः कुण्डलिनी नाम विसन्तु निभा शुभा ।।
इच्छा ज्ञान क्रियात्मासौ तेजो रूपा गुणान्विता ।
क्रमेणानेव सृजति कुण्डलिनी वर्णमालिकाम् ।। म.यो.वि.

---

1 योगः चित्तवृति निरोधः । यो. सू.
योगः कर्मसु कौशलम् ।। गीता
योगः समाधिः ।। वेद व्यास

2 यत्र सर्वं यतः सर्वं यत् सर्वं सर्वतः च यत् ।
यत्र नेदं यतो नेदं यन्नेदम् नेदृशम् जगत् ।। यो. व.

3 ज्योतिः रजः उच्यते । निरुक्त

कुण्डलिनी ब्रह्माण्ड संरचना का वह केन्द्र है जहाँ अति सूक्ष्म वर्ण कण आवेशित होकर सृजन और विसर्जन, संयोजन और वियोजन द्वारा परिवर्तित होते रहते हैं। इस लिए कुण्डलिनी को वेदादि ग्रन्थों में पूर्ण हंता, मूलास्था, या आधार शक्ति माना गया है।

ब्रह्म शक्ति का प्रसार सृष्टि और उसका संकुचन लय है। सृष्टि की पूर्व अवस्था तथा लय की अन्तिम अवस्था सदृश अवस्था या ब्रह्म अवस्था है। इन दोनों अवस्थाओं का जो केन्द्र है वह कुण्डलिनी है। जिसको कालचक्र भी कहते हैं।

ब्रह्म
|
सृष्टि
||
काल चक्र
|
लय
|
ब्रह्म

यह काल चक्र जहाँ वर्ण कण अन्तर्गत, बहिर्गत, अधोगत, उर्ध्वगत, प्रकृति और निवृति रूप में चलकर काटते रहते हैं वही कुण्डलिनी है। कुण्डलिनी के छेदन से ही ब्रह्म कण की प्राप्ति होती है। गरुण पुराण में कुण्डलिनी के षट चक्रों का वर्णन इस प्रकार है*।

---

* आधारं तु चतुर्दलानलसमं वासान्त वर्णाश्रयं।
स्वाधिष्ठानमपि प्रभाकर समं बालान्त षट् पत्रकम् ।।
रक्ताभं मणिपूरकं दशदलं डाद्यं फकारान्तकं।
पत्रैः द्वादशभिः आहतपुरं हैमं कठान्ताबृतम् ।
पत्रैः सस्वर षोडशैः शशधरं ज्योतिर्विशुद्धाबुजं।
हंक्षेदक्षर युग्मकं द्वय दलं रक्ताभ मात्राम्बुजं।
तस्मात् उर्ध्वगतं प्रभासित मिदं पद्मं सहस्रच्छदं॥
सत्यानन्द मयं सदाचिन्मयं ज्योतिर्मयं शास्वतम्॥

कुन्डलिनी के वर्णात्मक षट् चक्र

1.	मूलाधार चक्र	वं, शं, षं सं
2.	स्वाधिष्ठान चक्र	बं, भं, सं, मं, रं लं
3.	मणि पूरक चक्र	डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं फं
4.	आहत चक्र	कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छ, जं, झं, ञं, टं, ठं
5.	विशुद्धाख्य चक्र	अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, लृं, ॡं, एं, ऐं, ओं, औं, अं अः
6.	आज्ञा चक्र	हं क्षं ॥

कुण्डलिनी के इन छः चक्रों को पार कर ही अनाहत चक्र या शून्य चक्र या ॐकार चक्र की प्राप्ति होती है। जो तभी सम्भव है जब कुण्डलिनी चक्र केवल एक 'उ' वर्णात्मक कर दिया जाय। योग वासिष्ठ में इस शून्यात्मक स्थिति को नील वर्ण कहा गया है।

जगत्त नामागत व्योम्नि नीलत्वा दिवदीदृश्म् ॥॥ यो. व.

कुण्डलनी चक्र के आधार पर यह प्रकट होता है कि ब्रह्माण्ड की संरचना में लगे मूल कणों की संख्या 50 है। जो 6 चक्रों में कार्य रत रहते हैं।

इसी तरह योग की अन्य विधाओं में भी श्रृष्टि को वर्ण जन्य ही माना है। नाद योग में प्रणव की तीन विधाओं को अ इ उ कहा गया है जिसको क्रमशः प्रथम वाक्, द्वितीय नाद, तृतीय ज्योति कहा गया है[2]।

एकोनादात्मको वर्णः सर्व वर्णा विभागवान
सोऽनस्त मिति रूपत्वाद् अनाहतं इवोदितः।

---

[1] यदा कुण्डलिनी शक्ति राविर्भवति साधके
तदा सः पंच कोशेषु तेजो अनुभवति ध्रुवम् ॥॥

[2] नकारं प्राण नामं च दकारं अनलं विदुः
जातः प्राणाग्नि संयोगात् तेन नादोऽभिधीयते ॥॥
अनाहत मनुच्चार्य शब्द ब्रह्म परं शिवम्।
ब्रह्म रन्ध्रं गते वायो नादश्चोत्पद्यतेऽनध ॥
नाद एव घनीभूतः क्वचित् अभ्येति विन्दुताम् ॥॥ म.यो.वि.

महायोग विज्ञान में नाद की विभिन्न आभात्मक या रंगात्मक स्थितियों को प्रकट करने के लिए इन्हें लाल पीला नीला कहा गया है ।

नीवार शूकवत् शुक्र ज्योतिवत् सूर्यवत् ।
चन्द्रवत् च अणुवत् सूक्ष्म प्रादेश परिणामवत् ।।
खद्योतवत् च स्फटिक सदृश तारावत् क्वचित् ।
पीतः ज्योतिः क्वचित् रक्तः ज्योतिः शुभ्रद्युतिः क्वचित् ।।
विविध ज्योतिरन्यत्र ज्योतिषां ज्योति रेव सः ।
अभिव्यक्ति करा एवं अकाराः ब्रह्मणि स्थिता ।।
ज्योतिरेव परं ब्रह्म ज्योतिरेव परं सुखम् ।
ज्योतिरेव परा शान्तिः ज्योतिरेव परम् पदम् ।।

गोरक्ष पद्यति के अनुसार हठ योग भी वर्णात्मक है । हकार सूर्य और ठकार चन्द्रमा है । इन दोनों का संयोग ही हठयोग है ।

हकार कितितः सूर्यः ठकारः चन्द्र उच्यते ।
सूर्य चन्द्रमसो योगात् हठ योगो निगद्यते[1] ।। गो. प.

क्षुरिकोपनिषद में नाड़ी योग के विषय में कहा गया है कि नाड़ी रूप में वर्णित सम्पूर्ण शारीरिक तंत्र वर्णात्मक है । ये नाडियां सूक्ष्म रूप में लाल, पीली, नीलो, ताम्र वर्णीय, काली और सफेद हैं ।

अणु रक्ताश्च पीताश्च कृष्णाः ताम्राः विलोहिताः ।
अति सूक्ष्मां च तन्वीं च शुक्लं नाडीं समाश्रयेत ।।
तत्र संचारयेत प्राणान् उर्णनाभि इव तन्तुना ।
तत्र नाडी तु सुषुम्ना नाडीभि बहुभिः वृता ।।

नाडियां[1] यद्यपि; तीन ही प्रमुख मानी गयी है । इडा, पिंगला, तथा सुषुम्मा, ज्योतिष ग्रन्थों में इन्हें आदि मध्य तथा अन्त्य नाडी कहा गया है, लेकिन क्षुरिकोपनिषद के अनुसार नाडी और प्रति नाडी करके इनको 72 हजार प्रकार का कहा गया है । जहाँ सुषुम्ना नाडी ही अभेद्य है ।

---

[1] सुषुम्णः सूर्य रश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्व : य० वे० 14/40
[2] इड़ा तिष्ठति वामेन पिंगला दक्षिणेन च ।
तर्योमध्ये वरं स्थानं यस्तं वेद स वेद वित् ।। क्षुं० उ०

द्वासप्तति सहस्राणि प्रतिनाडीषु तैतिलम्
छिद्यते ध्यानयोगेन सुषुम्नेका न छिद्यते ।। क्षु० उ०

इसी तरह महायोग, पूर्णयोग, मंत्रयोग, जपयोग कर्मयोग, सांख्ययोग, राजयोग, शब्दयोग, वाकयोग, हंसयोग, तालयोग, लययोग, अहंकारयोग आदि सभी वर्णात्मक हैं ।

जकारो जन्म विच्छेदः पकारः पापनाशकः ।
तस्मात् जपः इति प्रोक्तो जन्मपापविनाशकः ।।
हकारः कीर्तितो सूर्यः मकारश्च चन्द्रमा ।
हकारः निर्गमे प्रोक्तः सकारो अन्तः प्रवेसने हंसः ।।
तकार शंकरः प्रोक्तः लकारः पार्वती स्मृतम् ।
शिवाशंकरसंयोगात् तालः इत्यविधीयते ।।
अकारः सर्व वर्णाग्रः प्रकाशः परमः शिवः ।
हकारोन्त्य कलारूपो विसर्गः कथितः प्रिये ।।
मंत्री हठो लयो राजा योगोयं भूमिका क्रमात् ।

षट् चक्र निरुपण में कहा गया है कि ब्रह्म एकाक्षर है कुण्डलिनी उसकी कला है जो नाद शक्ति से युक्त है[1] ।

—✱—

16. तंत्र दर्शन में

ब्रह्म स्वयं व उसका सृष्टि रूप में विस्तार तथा सृष्टि से उसका बन्धन एवं सृष्टि का पुनः ब्रह्म में संकुचन अथवा लय की व्यवस्था ही तंत्र का विषय है । अस्तु तंत्र सृष्टि, संहार और सृष्टा के विवेचन का शास्त्र है । यह ब्रह्म, माया और सृष्टि के रूप में विस्तार बन्धन और पुनः स्वरूपण की अनवरत क्रिया किस ढंग से क्रियाशील है इसका वर्णन तंत्र का विषय है ।

---

[1] एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परन्तपः ।
कला कुण्डलिनी चैव नादशक्तिसमन्विता ।।

तंत्र शास्त्र का केन्द्र विन्दु भी एकाक्षर ब्रह्म है। जिसे आदि स्वर या मूल वर्ण कहा जाता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में जो भी स्वरूप आदि हैं और उनमें जो भी क्रियायें हो रही हैं, वह सब स्वर के द्वारा ही हो रही हैं। अतः स्वर का ज्ञान ही श्रेष्ठ है। इसमें ही सब कुछ समाहित है।

ब्रह्माण्डखण्डः पिण्डाद्याः
स्वरेणैव हि निर्मिता।
सृष्टिसंहारकर्ता च
स्वरः साक्षात् महेश्वरः॥
स्वरज्ञानात् परम् गुह्यं
स्वरज्ञानात् परम् धनम्।
स्वरज्ञानात् परम् ज्ञानम्
न वा दृष्टं न वा श्रुतम्॥
स्वरे वेदाश्च शास्त्राणि
स्वरे गान्धर्व मुत्तमम्
स्वरे च सर्वं त्रैलोक्यं
स्वरः आत्मस्वरूपकं॥

शिव सूत्र प्रथम प्रकाश में कहा गया है कि अकार से क्षकार पर्यन्त जितने भी वर्ण हैं वे सब ब्रह्म की निर्माण कलायें हैं। जो मातृ रूप या शक्तियाँ हैं[1] और कलात्मक रश्मियों के रूप में हैं।

अकारादि क्षपर्यन्ताः
कलारताः शब्द कारणम्।
मातरः शक्तयः देव्यः
रश्मयश्च कलास्मृताः॥

सूत संहिता में कहा गया है कि अकार से क्षकार तक सभी वर्ण अत्यन्त पवित्र हैं। उनमें जो अन्तिम है वह आनन्द प्रद हैं।

अकारादि क्षकारान्ताः वर्णैरत्यन्त निर्मलैः।
अशेषशब्दार्या भान्ति तं आनन्दप्रदां नुमः॥

---

[1] शब्द राशि समुत्थस्य शक्ति वर्गस्य भोग्यतां।
कला विलुप्तविभवो गतः सन् सः पशुस्मृतः॥

काम धेनु तंत्र में वर्णो के स्वरूपों की चर्चा की गयी है जिसमें अकार से लेकर क्षकार तक सभी वर्णों को त्रिगुणात्मक शक्ति युक्त पांच कोशमय और आनन्द दायक कहा गया है।

श्रुणु तत्वमकारस्य अति गोप्यं वरानने।
शरद चन्द्र प्रतीकाशं पंचकोश मयं सदा ।।
पंच देवमयं वर्णः शक्तिः त्रयसमन्वितम्।
निर्गुणः त्रिगुणो पेतं स्वयं कैवल्य मूर्तिमान ।।
इकारं परमेशानि स्वयं परमकुण्डलिनीः।
पंच देवमयं वर्णः पीतः विद्युत् लता कृतिम् ।।
उकारं परमेशानि स्वयं कुण्डलिनी स्मृता।
धर्मार्थकाममोक्षं च सदा सुखप्रदायकम् ।।

मातृका विवेक के अनुसार अकार सब वर्णो में शक्ति युक्त है और सबको बसमें कर लेने वाला है। अग्रणीय वर्ण है।

अकारं सर्वदैवत्यं रक्तं सर्व वशकरं।
अकारः सर्ववर्णाग्रयः प्रकाशः परमं शिवः।
हकारोऽन्त्य कला रूपो विमर्शः कथितः प्रिये ।।

नादयुक्त एक ही वर्ण से सभी वर्ण बने हैं। वही अनाहत है। उकार है। प्रणव स्वरूप है। उसका इकारात्मक रूप पीले रंग का है तथा क्षकारात्मक रूप अरुण रंग का है।

एको नादात्मको वर्णः
सर्ववर्णाः विभागवान।
सोऽनस्तमित रूपत्वाद्
अनाहतः इवोदिताः ।।
इ आदयोः नव पीतास्यु।
क्षकारान्तः तु अरुणाः मता। तंत्रान्तर

प्रत्येक वर्ण एक मंत्र है। गूढ रहस्य वाला है। वह रंग व शक्ति युक्त है। शारदा तिलक तंत्र और श्री तंत्र में इस तरह का विचार प्रकट किया गया है।

सर्वे वर्णात्मका मन्त्राः ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका ।।

कालोत्तर तंत्र में कहा गया है कि शब्दात्मक वर्ण नादात्मक होने पर ध्वनि है। यही ध्वनि जब चिन्तनीय हो जाती है तो वह सूक्ष्म रूप धारण करती है और चिन्तन से परे होने पर वर्णात्मक या रंगात्मक होकर अनन्त शक्तिमान होकर परमात्म स्वरूप हो जाती है।

स्थूलं शब्दः इति प्रोक्तं
सूक्ष्मं चिन्तामयं भवेत्
चिन्तया रहितं यत्तु
तत्परं परिकीर्तितम् ।।

नव चक्रेश्वर तंत्र में कहा गया है कि वर्ण पिण्ड, पद, रूप, और रूपातीत होकर सर्वत्र व्याप्त है।

पिण्डं पदं तथा रूपं
रूपातीतं चतुष्टयम् ।
यो वा सम्यग् विजानाति
सगुरुः परिकीर्तितः ।।

गुरु गीता के अनुसार पिण्ड कुण्डलिनी है। पद हंस है। रूप विन्दु है और रूप से परे जो निरंजन है वह वर्ण है।

पिण्डं कुण्डलनी शक्तिः
पदं हंसः प्रकीर्तितः ।
रूपं विन्दुः इति ज्ञेयं
रूपातीतं निरंजनम् ।।

इसी पिण्ड, पद, विन्दु और निरंजन को शब्द शास्त्रियों ने वर्ण का वैखरी रूप कहा है। जिसको सुना, बोला, और समझा जा सकता है। इसका चिन्तन गम्य रूप मध्यमा है और वर्णात्मक रूप पश्यन्ती तथा ज्योतिमय रूप परा है।

तंत्र में मंत्र का अत्यधिक महत्व है। मन्त्र आदि शक्ति का गुप्त रहस्य है। यह शरीर यंत्र के मानसिक तरंगों से अनन्त ब्रह्म के साथ सम्पर्क करता है। अस्तु ध्वनि तरंगों को ब्रह्म तरंगों में रूपान्तरित करने का कार्य मन्त्र का है।

शिव सूत्र विमर्शिनी में मन्त्र को "चित्तं हि मंत्रः" कहा गया है। क्योंकि चित्त ब्रह्म तत्त्व से सम्पर्क बनाने का माध्यम है। जिसके द्वारा अनन्त के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

चेत्यते विभृश्यते परं तत्त्वं अनेन इति चित्तम्। पूर्ण स्फुरणं सत्व सप्रादप्रगवादिविमर्शरूपसम्वेदनम् तदैव मंत्रयते गुप्तं अन्तर भेदेन विमृश्यते परमेश्वररूपं अनेन इति कृत्वा मंत्रः।

मंत्र समस्त का ज्ञान कराने वाली तथा विकारों से रहित कर रक्षा करने वाली ब्रह्म शक्ति है।

मननात्सर्व भावानां त्राणात् संसार सागरात्।
मंत्ररूपा हि तत् शक्तिः मननत्राणस्वरूपिणी॥

ऋग्वेद में मंत्र के विषय में कहा गया है कि मत्र पवित्री या पवित्र है। मत्रः पवित्री उच्यते। पवित्र रश्मि वाचक है। रश्मयः पवित्र मुच्यते। इस प्रकार मंत्र रश्मि वाचक है। शब्दों का वह समूह जो निश्चित उद्देश्य की रश्मि का विकीरण करता है वह मंत्र है। अतः जो मंत्रों को गाते हैं वे गायत्रिन् कहलाते हैं। जो अर्चना करते हैं वे अर्किन् हैं। जो मंत्र का ब्रह्म स्वरूप प्रकट करते हैं वे ब्राह्मण कहलाते हैं।

गायन्ति त्वां गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः।
ब्राह्मणस्त्वां शतक्रतो उद्वशमिव येमिरे॥ ऋ.वे. 1-10-1

मंत्र को अर्क और अर्क को देवता कहा गया है। निरुक्त कार में देवता शब्द की व्याख्या में कहा है कि जो कान्तिमान है वह देव है। 'अर्को देवो भवति। यत् येन अर्चन्ति। मंत्र मकारात्मक है। इसलि तंत्र में मकार का अत्यधिक महत्व है। जिसको रहस्यात्मक बनाने के लिए विचित्र श्लोकों की भी रचना की गयी है। यथा—

मद्यं मासं च मीनं च
मुद्रा मैथुन मेव च।
मकारं पंचकं प्राहुः
योगिनाम् मुक्ति दायकम्॥

---

[1] देवो द्योतनात् वा। निरुक्त
देवानां भद्रा सुमति ऋजूयसां देवानां रातिः अभिनो निर्वताम्।
देवानां सख्यम् उपसे दिमावयम् देवान् आयुः प्रतिरन्तु जीवसे॥

मकार का तात्पर्य मंत्रों की मातृ शक्ति से है। इसी को योनि भी कहा जाता है। जहाँ बीज आरोपित होता है। सुस्थिर होता है और सम्बर्धित होता है। इसी मकार को कवर्ग के रूप में मद्य, चवर्ग के रूप में मास, टवर्ग के रूप में मत्स्य, तवर्ग के रूप में मुद्रा तथा पवर्ग के रूप में मैथुन कहा गया है। कुलार्णव तंत्र में 24 व्यंजनों के बाद मकार व्यंजन मैथुन रूप में परामृत कहलाता है।

चतुर्विशति मन्त्रः स्यात्
मैथुनश्चैव परामृतम्।

स्वच्छन्द तंत्र में सात लोकों में व्याप्त सप्त मातृकाओं का वर्णन इस प्रकार है। कवर्ग कमलोद्भवा है। चवर्ग महेशानी है। टवर्ग कुमारिका है। तवर्ग नारायणी है। पवर्ग वाराही है। यवर्ग ऐन्द्री है। शवर्ग चामुण्डा है वर्ग हीन महालक्ष्मी और माहेश्वरी हैं। इन सबको पशु माता भी कहा जाता हैं[1]।

अवर्गे तु महालक्ष्मी कवर्गे कमलोद्भवा।
चवर्गे तु महेशानी टवर्गे कुमारिका॥
नारायणी तवर्गे तु वाराही पवर्गिका।
ऐन्द्री चैव यवर्गस्था चामुण्डा तु शवर्गिका॥

कवर्ग से लेकर मकार पर्यन्त समस्त वर्ण पशु माता कहलाते हैं। पशु का तात्पर्य प्रकाश की किरण से है जो इन वर्णों से पैदा होती है। प्राचीन काल में गौमेध यज्ञ का तात्पर्य भी प्रकाश की किरणों का भेदन करना ही था ताकि अनन्त उर्जा का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके।

कवर्गादिषु माहेश्वर्याद्याः पशुमातरः।

योगिनी हृदय तंत्र में इन्हीं मातृका या मकारों के रंग का वर्णन किया गया है। ब्राह्मणी पीत वर्ग की है। माहेश्वरी श्वेत वर्ण की है। वैष्णावी श्याम वर्ण की है। महालक्ष्मी पीले रंग की है। वाराही सांवलेपन की है अर्थात उज्ज्वल है[2]।

---

[1] पशु प्रकाश पुंज के अर्थ में प्रयुक्त होता है।
रश्मिः गौ उच्यते। गौ पशुभवति। निरुक्त

[2] नीलजीमूतसंकाशा सर्वाभरणभूषिता।
वारण्डो दिशि देवेशि वाराही पर्युपस्थिता॥ स्व. तं.

ब्राह्मणी पीत वर्णा च, चतुर्भिः शोभिता मुखैः ।
माहेश्वरी श्वेत वर्णा, त्रिनेत्रा शूल धारिणी ।।
वैष्णवी श्याम वर्णा च शंखचक्रवराभयान् ।
वाराही श्यामलच्छाया पौत्रचक्रसमुज्ज्वला ।।
महालक्ष्मी च पीताभा पद्मदर्पण मेव च ।

तंत्र में मकार, मातृका शक्ति तथा योनि का एक ही तात्पर्य है। वामकेश्वरी मत में वर्णन किया गया है कि एक ही अक्षर को मातृका से युक्त करना जो व्यक्ति जान जाता है वह महा शक्तिशाली हो जाता है[1]। यह एक अक्षर बीजात्मक अक्षर कहलाता है। महर्षि पाणिनि ने इन बीज अक्षरों को शिवसूत्र कहा है। नित्य तंत्र में कहा गया है की मूल तीन वर्णों से लेकर नौ, वर्णों तक बीज मंत्र हैं। ये अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ हैं।

वर्ण त्रय मारभ्य नववर्णावधि बीजकाः ।

मालिनी विजयोत्तर तंत्र में वीज और योनि के भेद से दो प्रकार के वर्णों का स्वरूपण किया गया है। जिसमें स्वर बीज और व्यंजन योनिरूप हैं।

बीजयोन्यात्मकाद् भेदात्
द्विधा बीजं स्वराः मतः ।
कादिभिश्च स्मृता योनिः
नवधा वर्ग भेदतः ।।
बीजः मंत्रः शिवः शक्तिः ।
योनिः इत्यभिधीयते ।।

---

[1] यदक्षरेकमपि संसिद्धे स्पर्द्धते नरः ।
रविताक्ष्यन्दुकन्दर्पशंकराजविष्णुभिः ।।
यदक्षरं शशिज्योत्स्ना मण्डितं भुवनं त्रयं ।
वन्दे सर्वेश्वरों देवीं महाश्रीं सिद्धिमातृकाम् ।।
यदक्षरं महासूत्रं प्रोक्तं मेतजगव्त्रयम् ।
ब्रह्माण्डापि कटाहं तं जगदद्यापि दृश्यते ।।
अकचादि टनोन्नद्ध पयसाक्षरवर्गिणिम् ।
जेष्टाङ्गवाहुहृत्पृष्टकटिपादनिनासनीम् ।।
तां इकाक्षरोद्धारं साराधारां परोपराम् ।
प्रणमामि महादेवीं परमानन्दस्वरूपणिम् ।।

कुलार्णव तंत्र में कहा गया है कि अकार से पैदा होने वाली कचवर्ग की शक्ति दश कला युक्त है। जिनके नाम स्थिति, सिद्धि, सृष्टि, मेधा, स्मृति, ऋद्धि, कान्ति, लक्ष्मी, द्युति तथा स्थिरा हैं। इकार से पैदा होने वाली टतवर्ग की शक्ति दश कला युक्त है। जिसके नाम जरा, पालिनी, शान्ति, ईश्वरी, रति, कामिका, वरदा, आल्हादिनी, प्रीति दीर्घा हैं। उकार से पैदा होने वाली पयवर्ग की शक्ति दश कला युक्त है। जिनके नाम तीक्ष्णा, रौद्री, भया, निन्द्रा, तन्द्रा, क्रोधिनी, क्रिया, उत्कारी, क्षुत और मृत्यु हैं।

स्थितिः सिद्धिः इति प्रोक्ता कचवर्ग कला दश।
अकारप्रभवा ब्रह्म जातास्युः सृष्टये कला ॥
आग्नेयादि वर्णात् दशधर्म प्रदाः कलाः।
सृष्टि मेधा स्मृतिः ऋद्धिः कान्तिः लक्ष्मीः द्युतिः स्थिरा ॥
जरा च पालिनी शान्ति रीश्वरी रति कामिके।
वरदाल्हादिनी प्रति दीर्घाः स्युः टतवर्गजा ॥
उकार प्रभवा विष्णुजाता स्युः स्थितिः ये कला।
तीक्ष्णा रौद्री भया निद्रा तन्द्रा क्षुत् क्रोधिनी क्रिया
उत्कारी मृत्युः इत्युक्ता पयवर्ग कला दश।
मकार प्रभवाः रुद्र जाताः संहृते कलाः ॥

तात्पर्य दीपिका में कहा गया है कि नाद की स्थूला, वैखरी, सूक्ष्मा, मध्यमा, परा, पश्यन्ती रूप मातृका ही हैं।

तत्र च वैखरी स्थूला मध्यमा सूक्ष्मा परा
पश्यन्ती रूपा सूक्ष्मतरा मातृकोत्तमाधिकारिणः ॥

श्री तंत्र सूत्र विमर्शिनी में कहा गया है कि सभी वर्ण मंत्र है जो शिवात्मक मातृका शक्ति से युक्त हो जाते हैं।

सर्वे वर्णात्मका मंत्राः ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका ॥

मातृका के बारे में अन्यत्र भी कहा गया है कि अकार से क्षकार पर्यन्त मंत्र वर्ण रूपी मातृका अक्ष माला ही है।

अकारप्रथमं देवि क्षकारान्त्यः ततः परम्।
अक्षमालेति विख्याता मातृका वर्ण रूपिणी ॥

सूत संहिता में कहा गया है कि मातृका की तीन स्थितियाँ हैं। स्थूल, सूक्ष्म, अति सूक्ष्म।

मातृका च त्रिधा ज्ञेया
स्थूला सूक्ष्मा सूक्ष्मतरापि च।

तंत्र में मातृकाओं का महत्व प्रति रूप के कारण अधिक है। इनकी संख्या 50 से 54 के बीच मानी गयी है। प्रयत्न तंत्र सार म कहा गया है कि बिश्व योनि शारदा अकारादि स्वर, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग तवर्ग पवर्ग यकारादि सभी वर्णों से युक्त, शास्वत, ध्वन्यात्मक स्वरूप से सबके मन को शुद्ध करती है। अहंकार तंत्र में अ से लेकर ह तक मातृकाओं की संख्या मानी जाती है। तंत्र में त्रिकोण का तात्पर्य योनि से है जिसकी स्थिति ब्रह्म योनि से लेकर स्वात्म योनि तक है। योनि मातृ वाचक या शक्ति वाचक है जिसमें प्रजनन की क्षमता है। यह पुरुष से स्थूल है। जिसमें पुरुष तत्त्व को धारण करने की क्षमता है। योनि का तात्पर्य गर्भ से भी है जिसके अन्दर बीज पोषित होता है। यद्यपि तंत्र में मूल योनि एक ही है। किन्तु सृष्टि में वह लिंग के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। योनि का परिमाप पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी रूप में होता है। जिसको क्रिया, ज्ञान और इच्छा शक्ति भी कहा जाता है। इसी को यंत्र, तंत्र, मंत्र भी कहा जाता है।

विन्दु का तात्पर्य परमात्म स्वरूप से है। जो लिंगात्मक है बीज स्वरूप है। परा स्वरूप पुरुष है तथा सूक्ष्म नाद शक्ति है।

तंत्र में मन्त्र के बाद यंत्र को प्रमुख स्थान दिया गया है। वेद में यंत्र का तात्पर्य परमात्मा की कारीगरी से लिया गया है।

सविता यंत्रैः पृथिवीमरम्णात्
अस्कम्भने सविता द्याम् अदृंहत्।
अश्वमिवाधुक्षद् ध्वनिमन्तरिक्षम्
अतूर्त्ते बद्धम् सविता समुद्रम्।। ऋ.वे. 10-149-1

उपरोक्त वेद मंत्र का आशय है कि परमात्मा अपनी कान्ति रूपी यंत्रों से पृथ्वी आदि लोकों की रचना भी करता है और उन्ही के द्वारा दोहन अवशोषण आदि करता रहता है। सृष्टि के स्वरूप को सुरक्षित रखने के विधान को यंत्र कहते है कुलार्णव तंत्र ने भी इसी तरह का विचार प्रकट किया है।

यम् भूतादि सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽपि कुलेश्वरी।
त्रायते सततश्चैत्र तस्मात् यंत्रं इतीरितम् ।।

यंत्र को काल चक्र भी कहते हैं। जो परमात्मा का अक्षय कार्य रूप है[1]। यंत्र को त्रिकोण, विन्दु, चक्र, चतुष्कोण के रूप में प्रकट किया गया है। त्रिकोण का तात्पर्य योनि है। विन्दु का तात्पर्य बीज है। चक्र का तात्पर्य गति है। चतुष्कोण का अर्थ निर्माण है। यंत्र में सृष्टि का ज्ञान कराने वाला श्री यंत्र श्रेष्ठ माना जाता है। आगम का सिद्धान्त है कि शिव और शक्ति एक दूसरे से अभिन्न हैं[2]। प्रत्येक अक्षर शिव और शिवा दोनों हैं। उनका दीर्घ रूप योनि और सूक्ष्म रूप विन्दु या बीज है।

वर्ण ह्रस्व दीर्घ प्लुत रूप में त्रिकोणात्मक है अनुस्वार रूप में सृष्टि और विसर्ग रूप में लय या सृष्टि का अन्त है। अव्यक्त सत्ता का योनि में संयोजन होना ही लिंगात्मक व्यक्त सत्ता है। वर्णों के मेल से ही सृष्टि का क्रम है। वर्ण क्रमानुसार सृष्टि के तीन प्रकार हैं। परा सृष्टि जो ॐकारात्मक सृष्टि कहलाती है। ईश्वरीय सृष्टि

---

[1] काकारात् कारणे शान्ते
लकारात् लयोत्र वै।
चकारात् चल चित्तस्य
क्रकारात् क्रम बन्धनै ।।

[2] न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः ।।

[3] आत्मा बुद्या समेत्यार्थान् मनोयुंक्ते बिवक्षया
मनः कायाग्नि माहन्ति स प्रेरयति मारूतम्।
सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः
वर्णान् जनयते तेषां विभागः पंचधामतः ।। पाणिनीय शिक्षा।

जो प्रकाश आदि कणों की सृष्टि है वह दिव्य सृष्टि कहलाती है। ब्राह्मी सृष्टि जो समस्त स्थूल तत्त्वों की कारक है। उससे ही समस्त भूतों का उद्गम होता है।

तंत्र के अनुसार सृष्टि में कोई भी पदार्थ अयोनिज नहीं है। पाणिनीय[1] शिक्षा के अनुसार वर्ण भी पैदा होते हैं। सृष्टि जब ऊर्ध्वगत होकर ब्रह्म मय होती है तो ब्रह्म भी योनिज हो जाता है। तंत्र में षट् कोण यंत्र जिसमें दो त्रिकोण हैं जो सृष्टि का अधक्रम और ऊर्ध्व क्रम प्रकट करते हैं। अधोगत शीर्ष गुरुत्वाकर्षण है। और ऊर्ध्वगत चुम्बकीय शक्ति है।

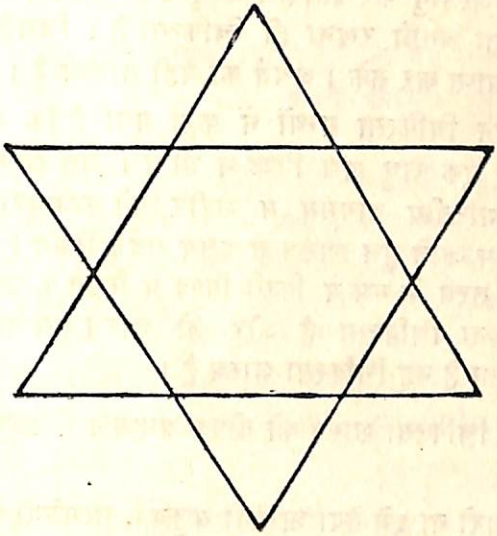

—✱—

17. चिकित्सा दर्शन में

चिकित्सा का तात्पर्य स्वरूप के स्वाभाविक क्रम में आये विकार को दूर कर पुनः उसे प्रकृति दत्त स्वरूप प्राप्त कराना है। वैदिक वांगमय में इस व्यवस्था को अथर्व कहा गया है। अथर्व का तात्पर्य ब्रह्माण्डीय स्वरूपों की प्राकृतिक स्थिति को विचलन से रोकना है। ब्रह्माण्ड में स्थित योनिगत प्रत्येक स्वरूप की प्राकृतिक स्थिति स्वयं में भिन्न होती है जिस कारण उसकी आकृति आदि में अन्तर होता है। लेकिन ब्रह्म रूप में या मूल रूप में सबकी अवस्था साम्य होती है।

स्वरूप की क्षणिक प्राकृतिक स्थिति ही उसका जीवन काल है। जो समय के छोटे से छोटे अंश से लेकर खरबों वर्षों तक भी हो सकता है। अपने इस जीवन काल में उसे सृष्टि और लय हेतु प्रति रूपों से संघर्ष करना पड़ता है। यदि इस संघर्ष में क्षयकारी प्रति स्वरूप की स्थिति और शक्ति अधिक होती है तो वह जीवन में अस्थिरीकरण करके उसे अल्पायु कर देती है। अस्तु इस अस्थिरीकरण को रोक कर पुनः स्थिरता बनाये रखना ही चिकित्सा है। जिससे कोई भी स्वरूप दीर्घ आयु प्राप्त कर सके। अथर्व का यही तात्पर्य है।

प्राचीन चिकित्सा ग्रन्थों में कहा गया है कि जो ब्रह्माण्ड में है वही उसके एक लघु अंश पिण्ड में भी है। यत् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे। इसीलिए भारतीय वांगमय में शरीर को ब्रह्मपुरी कहा गया है[1]। क्योंकि ब्रह्म अपने मूल स्वरूप से इसमें सदैव स्थित है। यह परमात्मा जो आत्म तत्त्व के रूप में किसी पिण्ड में स्थित है उसे दीर्घ काल तक बनाये रखना चिकित्सा है और जो शास्त्र इस कार्य के लिए दिशा निर्देश करता है वह चिकित्सा शास्त्र है।

इसी चिकित्सा शास्त्र को गोपथ ब्राह्मण में ब्रह्म वेद कहा गया है।

चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः।

गो. ब्रा. 2-16

---

[1] उर्ध्वो नु सृष्टाः तिर्यङ् नु सृष्टाः।
सर्व दिशः पुरुष आ बभूव।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्या पुरुष उच्यते॥ अ. वेः 10-2-88

अर्थव वेद में भी यही विचार प्रकट किया गया है।

तमृचः सामानि यजूंषि ब्रह्म चानुचलन ।। अ.वे. 15-16-18

इसी ब्रह्म वेद को ताण्ड्य ब्राह्मण में भेषज या अथर्व कहा गया है।

भेषजं वा अथर्वाणि । ता०ब्रा० 12-9-10
भेषजं वै देवानां अथर्वाणः भेषज्यायै वरिष्टयै ।
ता.ब्रा. 16-10-10

गोपथ ब्राह्मण में कहा गया है। भेषज अमृत है अथर्व है और ब्रह्म है।

यो अथर्वाणः तद् भेषजं तद् अमृतं[1] ।
यत् अमृतं तद् ब्रह्म । गो.ब्रा. 3-14

सुश्रुत में कहा गया है कि ब्रह्म का अथर्व रूप ही आयुर्वेद है।

इह खलु आयुर्वेदो नाम यदुपाङ्गम्
अथर्व वेदस्य । सु.अ.-10

आयुर्वेद अमित आयु भोगने का प्रयत्न है। सृष्टि और लय में सतत् क्रियाशील इस ब्रह्माण्ड में प्रत्येक स्वरूप को सत रज तम तीन गुणों से तथा दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से व वात, पित्त, कफ प्रकृतियों से गुजरना पड़ता है। इस क्रिया में उसकी स्वाभाविक स्थिति में अन्तर आ जाता है। इस अन्तर को दूर कर उसे अनमीवा बनाना या विकार रहित स्थिति को पुनः प्राप्त कराना ब्रह्म वेद का कार्य है। इसलिए अथर्व वेद में कहा है कि सब अपने शरीर से अमीवा रहित हों।

स्वे स्वे क्षेत्रे अनमीवा विराज । अ.वे. 11-1-22

---

[1] यो वै तां ब्रह्मणो वेदाहमृतेनावृतीपुरम् ।
तस्मै ब्रह्म च ब्रह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ।।
न वै तत्र चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्या पुरुष उच्यते ।।

इन विकारों को दूर करने के लिए प्राचीन ग्रन्थों में तीन चिकित्सा पद्यतियों का वर्णन है।

1. दैविक क्रिया—प्राकृतिक योगादि कियाओं द्वारा निर्मलीकरण।
2. भौतिक क्रिया—परिवेश में उपलब्ध जड़ी बूटियों या औषधियों द्वारा निर्मलीकरण।
3. दैहिक क्रिया—शल्यादि क्रियाओं से विकृत अंगों को ठीक करके निर्मलीकरण।

एतरेय उपनिषद में चिकित्सा के स्वरूप को त्रिलोक व्यष्टि और त्रिलोक समिष्टि के रूप में व्यक्त किया गया है। ब्रह्माण्ड देह के समस्त गुण क्रिया आदि स्वरूप पिण्ड देह में भी विराज मान हैं। अस्तु समिष्टि की तरह व्यष्टि भी उसका एक रूप है तथा उसका भी वर्ण और देव क्रम है।

त्रिलोक समिष्टि	देवता	वर्ण	अंग	त्रिलोक व्यष्टि
स्वः	सूर्य	उ	शिर	बुद्धि
भुवः	इन्द्र	इ	धड	मन
भूः	आप	अ	पैर	क्रियायें

समिष्टि जिस तरह दीर्घ जीवी है उसी तरह व्यष्टि भी दीर्घ जीवन प्राप्त करे इस हेतु ब्रह्म वेद या त्र्यंबक की उपासना या ज्ञान चिकित्सा का आवश्यकीय अंग है।

त्र्यंवक ब्रह्म की मूल तीन ज्योतियां हैं। जिन्हें अथर्व वेद 5-28-1 में इन्हें हरित, रजत और अयस नाम से जाना गया है।

नव प्राणान्नवभिः सं मिमिते दीर्घायुत्वायशत शारदाय[1] ।
हरिते त्रिणी रजते त्रिणी अयसि त्रिणी तपसा विष्टितानि ।। अ.वे.

अतः तीन क्रम से पैदा हुई ये तीन ब्रह्म आभायें जो समस्त को दीर्घायु दाता हैं। हमें उनका सदा सेवन करना चाहिए। ये ही एकाक्षरात्मक हैं और अमृतत्व को प्रदान करती हैं।

त्रयः सुपर्णा स्त्रिवृता
यदायन्नेकाक्षरं अभिसंभूयं शुक्राः ।
प्रत्यौहन्मृत्युममृतेन
साकमन्तर्दधाना दुरितानि विश्वाः ।

अ.वे. 5-28-8

अतः त्र्यंबक का प्रयोग हमें सदा करना चाहिए। यही अथर्व का उपदेश है।

त्र्यंबक यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ।।

—✱—

[1] दिवस्त्वां पातु हरितं मध्यात् त्वां पातु अर्जुनम् ।
भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद् देव पुरा अयम् ।। अ. वे. 5-28-9

18. गीता दर्शन में

महाभारत में महर्षि वेद व्यास जी ने गीता के महत्व को प्रकट करते हुए कहा कि गीता शास्त्र को जो ठीक रूप से जान लेता है फिर उसे किसी शास्त्र को जानने की आवश्यकता नहीं रह जाती क्योंकि यह ब्रह्म विद्या का शास्त्र है[1]। गीता में सांख्य आदि योगों द्वारा ब्रह्म का विवेचन एकाक्षर के रूप में ही किया गया है तथा उसी को ब्रह्माण्ड का कर्ता माना गया है व उसी को प्राप्त करने को कहा गया है।

ॐ इति एकाक्षरं ब्रह्म ।। गीता 8-13

यद् अक्षरं वेद विदो वदन्ति
विशन्ति यत् यतयो वीतरागाः ।
यद् इच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति ।
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ।। गीता 8-11

यह उकार ही जगत का पितामह है। पालन करनेवाला है। तथा यथा स्थिति को बनाये रखने वाला है। यह ऋक् यजु साम रूप में सर्वत्र व्याप्त होते हुए सारे कार्यों को करानेवाला है[2]। यह सब कुछ जो भी है वह ब्रह्म ही है और उसी में समा रहा है।

पितामहस्य जगतो धाता माता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक् यजु सामरेव च ।।
ब्रह्मार्णवं ब्रह्म हविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म कर्म सभाधिना ।। गीता

---

[1] ॐ तत्सदिति श्रीमद् भगवत् गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्म
विद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे मोक्ष
सन्यास योगो नामाष्टदशोऽध्यायः ।। गीता
गीता सुगीता कर्तव्या किमन्ये शास्त्र विस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिः सृताः ।। आ. भा.

[2] कर्म ब्रह्मोद्भव विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवं ।
तस्मात् सर्व गतं ब्रह्म नित्यंयज्ञे प्रतिष्ठतम् । गीता 3-15

वेद की तरह गीता में भी वर्ण को ही जगत का कर्ता माना गया है। ब्रह्म योनि में अहंकार बीज के स्थापित होने से ही सृष्टि का निर्माण हुआ है। इसी लिए वहाँ कहा गया है कि समस्त वेदों में अहम् ही एक जानने योग्य है।

वेदेषु सर्वे अहम् एव वेद्यः[1]। गीता
सर्व भूतेषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महत् योनिः अहं बीज प्रदः पिता ।। गीता

अहम् 'अ' से लेकर 'ह' तक की वर्णमाला है। ब्रह्म की त्रिगुणात्मक सृष्टि के स्वरूप को प्रकट करते हुए कहा गया है कि यह अक्षर ब्रह्म, परम व सूक्ष्म होने के कारण सब पदार्थों के अन्तर्गत है। यह वर्तमान, भूत और भविष्य का कर्ता है तथा सबको अपने में समेटने वाला है।

अक्षरं ब्रह्म परमं
स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूत भावोद्भव करो
विसर्गः कर्म सज्ञितः ।। गीता 8-3

—★—

19. पुराण दर्शन में

पुराण वेद की लौकिक शाखा के ग्रन्थ हैं। पुराणों में अव्यक्त ब्रह्म को मानव रूप में संवार कर उसे सर्व साधारण के लिए सुन्दर कथानकों के रूप में बोधगम्य कराया गया है। साथ ही ब्रह्म के गूढ रहस्यात्मक स्वरूप को पूर्वानुसार यथा स्थिति संजोके रखा गया है। ऐसा लगता है कि पुराण कारों ने वेद आत्मा को पुराण रूपी शरीर दे दिया हो। ब्रह्म को पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु, शिव व उनकी शक्तियों के रूप-में सुन्दर ढंग से प्रकट किया गया है।

---

[1] अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं। ऋ. वे. 10-4-81
[2] अक्षराणामु अकारोऽस्मि ।। गीता

उदाहरण के लिए ईश्वरीय शक्तियों का चतु र्भुजी रूप उनके चार आयामों को ओर ध्यान दिलाता है। लम्बाई, ऊंचाई, चौड़ाई और उनसे परे अव्यक्त रूप। पुराणों में वर्णों द्वारा रची गयी सृष्टि का ही विवेचन है। वामन पुराण में कहा गया है कि निराकार अक्षर ब्रह्म है और साकार अक्षर आनन्द स्वरूप जगत है।

अक्षरं चिन्मयं प्रोक्तं ज्ञानरूपं निराकृतिः।
नित्यं एव प्रथग्भूतो हि आनन्दोऽपि साकृतिः॥

अग्नि पुराण में इकार विष्णु को तीनों लोकों को मोहित करने वाला अ वर्ग का जनक और उग्रवीर कहा गया है।

ॐ इं ईं उग्रवीरं महा विष्णुं ज्वलन्तं सर्वतो मुखम्।
ॐ इं श्रीं ह्रीं हूं त्रैलोक्य मोहनाय विष्णवे नमः।
नमो भगवते च आदौ अ आ अं अः स्वर बीजकाः॥

अग्नि पुराण में सम्पूर्ण वर्ण माला को देवता और मंत्र मान कर वर्ण प्रतिवर्ण रूप से सम्पूर्ण का निर्माता माना गया है।

रतिश्च विरतिश्च प्रीतिश्च विप्रीतिश्व मतिः धृतिः विधृतिश्च पुष्टि रेभिश्च।

क्रमात् कामादि कै युताः ओम् छं नित्य क्लिन्ते मदद्रवे ओम्। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः। क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व श ष स ह क्ष। ॐ छ नित्य क्लिने मदद्रवे स्वाहा। आधार शक्ति पद्मञ्च सिंहे देवी हृदादिषु।

इसी तरह शिव पुराण में कहा है कि अकार, उकार, मकार, आदि प्रकृति एवं पुरुष रूप में सदाशिव ही सम्पूर्ण के कर्ता धर्ता हैं और नादात्मक ब्रह्म स्वरूप हैं। अकार बृहत बीज है रज का निर्माता है। उकार प्रकृति का जनक है।

अकारस्तु बृहत् बीजं रजः स्रष्टा चतुर्मुखः ।
उकारः प्रकृति योनिः सत्व पालयिता हरिः ।।
मकार पुरुषो बीजी तमः संहारको हरः ।
विन्दु महेश्वरो देवः तिरोभाव उदाहृतः ।।

लिंग पुराण के अनुसार उ कार प्रधान योनि है जिससे समस्त का निर्माण हुआ है। यह प्रकट रूप में शब्द ब्रह्म है और अव्यक्त रूप में अलिंग वर्णात्मक शिव है।

उकाराख्यो हरिर्योनिः प्रधान पुरुषेश्वरः ।
बीजीं च बीजं तद् योनिः नादाख्यश्च महेश्वरः ।।
उकार योनौ निः क्षिप्तम् अवर्धत समन्ततः ।
सौवर्णम् अभवत् चाण्डम् आवेद्यं तद् लक्षणम् ।।
शब्द ब्रह्म तनुं साक्षात् शब्द ब्रह्म प्रकाशकम् ।
वर्णावयम् अव्यक्त लक्षणम् बहुधा रूप स्थितम् ।।
अलिंगः लिंग मूलं तु अव्यक्तः लिंगमुच्यते ।
अलिंगः शिव इत्युक्तो लिंग शैव इति स्मृतम् ।।

अग्नि पुराण में शिव के मुख के अंगों के रूप में वर्णों को प्रतिस्थापित किया गया है। अ माथा इ आंख, उ कान, ऋ नाक, लृ गाल, ए दांत, ओ ओष्ठ, अं गर्दन और अः को जीभ कहा गया है।

गरूण पुराण में कहा गया है कि हमें हमेशा त्रिवृत अक्षर ब्रह्म को पाने का मन से प्रयत्न करना चाहिए।

---

[1] अ श्री कण्ठः शिखायां आ वक्त्रे स्यात् अनन्तकः ।
इ सूक्ष्मो दक्षिण नेत्रे स्यात् ई त्रिमूतिस्तु वामके ।।
उ दक्षिण कर्णेऽमरीशः ऊ कर्णेवामको परे ।
ऋ भावमूर्ति नासाग्रे वामनासा तिथीश ऋ ।।
लृ स्थाणु दक्ष गण्डे स्यात् वाम गण्डे हरश्च लृ ।
ए करीशो दन्त पंक्तिः भूतेशो ऊर्ध्व दन्त ऐ ।।
ओ सद्यो जात अधरे ऊर्ध्व ओष्ठेऽनुग्रहीश औ ।
अं क्रूरो घटकायां स्यात् अः महासेन जिह्वया ।।

अभ्यसेत् मनसा शुद्धं त्रिवृत् ब्रह्म अक्षरं परम् ।

पुराण में अक्षर शिव वाचक है और क्षर समस्त जगत है। क्षर और अक्षर क्रम से ब्रह्म के स्वरूप में प्रकृति और पुरुष का सास्वत सम्वन्ध है। क्षर प्रकृति है और अक्षर में पुरुष है[1]।

अक्षर क्षरयोरेषः द्वयो सम्वन्ध इष्यते ।
स्त्री पुंसयोर्वा सम्वन्धः सवै पुरुष उच्यते ।

सौर पुराण में कहा गया है यह अक्षर या वर्ण ऋक् यजु साम रूप में जगत का कारक है। ज्योति स्वरूप है। शिव है। शुद्ध व्योमाकार अक्षय आनन्द दाता है। यही सूर्य है।

अक्षरं परमं व्योम शैवं ज्योति रनामयन् ।
अक्षरं निर्गुणं शुद्धं आनन्दं परम अव्ययम् ।।
नत्वां सूर्यं परं धामं ऋग्यजुः साम रूपिणम् ।
त्रि सत्यं त्रि जगत् योनिं त्रि मार्ग त्रितत्वगम् ।।
ज्योतिषमन्त त्रयो देवा व्यापकाः सर्वतो दिशम् ।
वसवस्ते समाख्याताः सर्व भूत हितैषिणः ।।

पुराणों में सर्वत्र वर्णों के रंगों का भी वर्णन है। अग्नि पुराण के अनुसार ये वर्ण लाल पीले नीले काले रंग के हैं तथा देदीप्य मान हैं।

श्वेता रक्ता सिता पीता श्यामा वह्निमिव भाषिता ।
कृष्णारूणाश्वेताः शक्तिज्वालारूपाः स्मरेत् क्रमात् ।।

शिव पुराण में कहा गया है कि एक अक्षर मकार तक गति करते हुए नीले से लाल स्वरूप में परिवर्तित हो गया और उसका अकारात्मक रूप सृष्टि कर्ता तथा उकार रूप सृष्टि को वशीभूत करने वाला बन गया।

एकाक्षर मकाराख्यात् भगवान नील लोहितः ।
सर्वकर्ता तु अकाराख्यो उकाराख्यः तु मोहकाः ।।

---

[1] यच्य तद् क्षरमित्युक्तं यत्रेद क्षरते जगत् ।
यच्य अक्षरम् इति प्रोक्तं शिवं क्षेममनामयम् ।।
विचित्र रूपो विश्वात्मा एकाक्षर इति स्मृतम् ।।
धृतं एकात्मकं येन कृत्स्नं त्रैलोक्यमात्मना ।।

नारद पुराण के अनुसार एक ही वर्ण ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, अनुस्वार, विसर्ग चक्र में सफेद, काला, लाल, नीला, पीला नारंगी, आदि सोलह वर्णात्मक कला रूपों में कान्तिमान होता है।

ह्रस्वो दीर्घः तथा स्थूलः चतुरस्तोणु वृत्तनाम।
शुक्लः कृष्णः तथा रक्तो नीलः पीतो अरूणः तथा ।।
एवं षोडश विस्तारो ज्योतिरूपः गुणः स्मृतः।
तत्रैक गुणाकाशं शब्दं इत्येव तत्स्मृतम् ।।

यह एकाक्षर वर्ण ही संगीत के ऋषभ, षडज, गान्धार, मध्यम, धैवत, पंचम और निषाद स्वरात्मक रूपों को धारण करता है। यह ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रूपों में सृष्टि का निर्माता और रंगात्मक तथा धातुज है[1]।

तस्य शब्दस्य वक्ष्यामि विस्तरं विविधात्मकम्।
षड़जो ऋषभ्गान्धारौ मध्यमो धैवतः तथा ।।
पंचम श्चापि निषादश्च एते सप्त धातवः।
एषः सप्त विधः प्रोक्तो गुणाकाश सम्भवः ।।

अग्नि पुराण में क्रमशः अग्नि, सूर्य, शशि, जीव, वरूण, चन्द्र और विश्वेदेव के रूप में सातों स्वरों व उनके रंगों लाल, नारंगी, पीले, हरे, नीले, जामुनी और भूरे का वर्णन किया गया है।

---

[1] पद्म पत्र प्रभः षडज् ऋषभ शुक पिंजरः।
कनका भास्तु गान्धारो मध्यमः कुन्द सन्निभः ।।
पंचमस्तु भवेद् कृष्णः पीतकं धैवतं विदुः।
निषादः सर्व वर्णास्याद् इत्येताः स्वर वर्णताः ।।
पंचमो मध्यम षडज् इत्येते ब्राह्मणाः स्मृताः।
ऋषभो धैवतः चापि इत्येतौ वै क्षत्रिया वुभौ ।।
गान्धारः निषादः च वैश्याद् वर्धन वै स्मृतौ।
शूद्रत्वं विधिनाद्वै व पतितत्वान्न संशयः ।।

अग्नि सूर्य शशी जीवो वरुणः चन्द्र रेव च ।
विश्वेदेवाश्च षड्जाद्याः स्वरा षड्जो वृषः क्रमात् ।।
गान्धारो मध्यम श्चैव पंचमो धैवतः तथा ।
निषाद वर्णाः श्वेतश्च सारंगश्च पिशंगकः ।।
कृष्णो नीलो लोहितश्च गौरो गायत्रि मुच्यते ।
गोरोचनाभा कृतयोः ज्योतिश्छन्दो हि श्यामलम् ।।

—✱—

आधुनिक तथा वैदिक कणवाद

1. आधुनिक कण परिवार

आधुनिक कण वाद जो परमाणुओं की नाभि के भीतर सृष्टि के मूल कारकों की खोज में संलग्न है उसके अनुसार सृष्टि की संरचना में चार प्रकार की शक्तियां काम करती हैं और इन शक्तियों के कारक कुछ मूल भूत कण हैं। ये शक्तियां और उनके कण निम्न प्रकार हैं।

1. स्ट्राँग फोर्स : इस बल का कारक ग्लूआन कण है जो क्वार्कों को जोड़ने में संलग्न रहता है। इसका कार्य क्वार्क कणों के भीतर उनकी रंगीन स्थिति को बनाये रखना है। इसका भार शून्य है व अनन्त शक्ति युक्त है। इस वर्ग में कणों का क्रम ग्लूआन, क्वार्क, हैड्रान वेरियान, प्रोटान, इलक्ट्रान है।

2. वीक फोर्स : इस शक्ति के कारक वीकान कण हैं जो क्वार्क और लेप्टान कणों के साथ कार्य शील रहते हैं। तथा न्यूट्रान के क्षय में सहायक होते हैं और उसके कारक भी हैं।

3. इलक्ट्रो मेगनेटिक फोर्स : इस शक्ति के कारक प्रयोग शालाओं में दृश्य फोटान कण हैं जिनका भार शून्य है और जो अनन्त शक्तिमान हैं।

4. ग्रेविटेशनल फोर्स : इस शक्ति के कारक अदृश्य ग्रेविटान कण हैं। जो भार शून्य हैं तथा अनन्त बलशाली हैं।

उपरोक्त इन बलों और उनके कारक कणों को ध्यान में रखते हुए प्रसिद्ध वैज्ञानिक आंस्टीन ने सन् 1934 में एकात्मक उर्जावाद का सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। जिसका मुख्य उद्देश्य सृष्टि में संलग्न विभिन्न कणों व बलों की एक रूपता को स्थापित करना था। इस कार्य को कालान्तर में कुछ हद तक प्रो. अब्दुल सलाम, प्रो. शेल्डन ग्लाशोव तथा प्रो. बाइन बर्ग ने अपने संयुक्त प्रयत्न से किया। जब उन्होंने सन् 1978 में अपनी संयुक्त खोज के आधार पर वीक फोर्स और इलक्ट्रोमेगनेटिक फोर्स का एकीकरण किया।

आजकल वैज्ञानिक खोजों का लक्ष्य उर्जा के एकीकरण सिद्धान्त को प्राप्त करना है। समस्त कणों के मूलाधार एक कण को खोज कर सृष्टि क्रम में उसकी एक रूपता जानना है। इस कार्य हेतु उन्होंने परमाणु की नाभि में कुछ सूक्ष्म कणों की खोज की है। उनका वर्गीकरण निम्न प्रकार है।

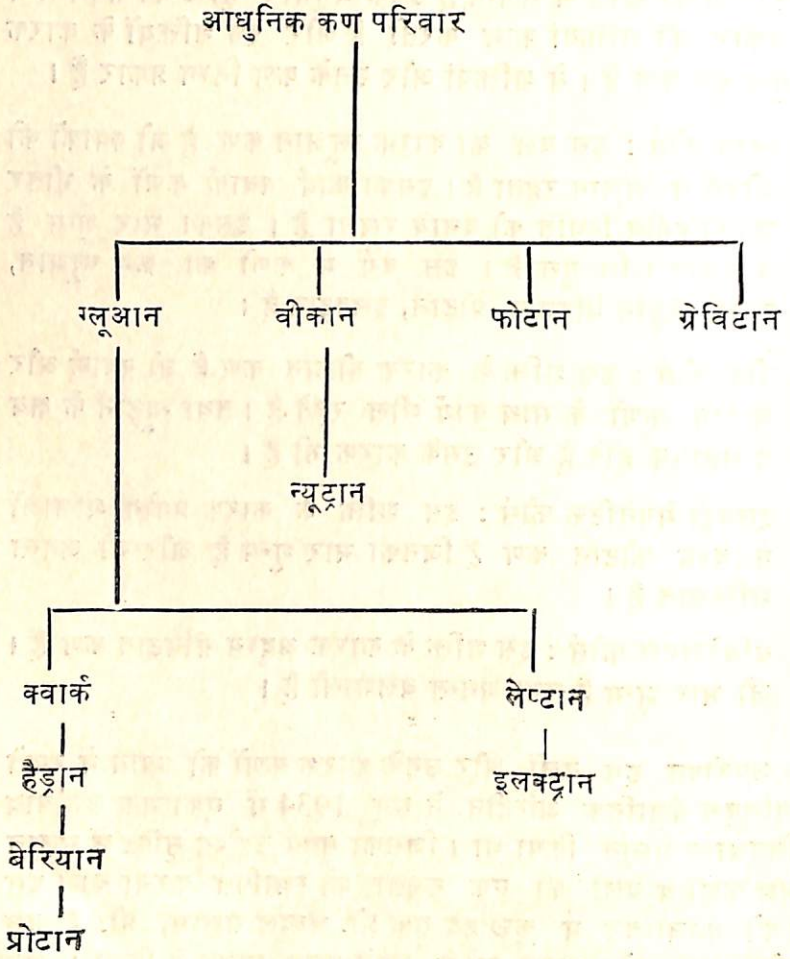

नीचे आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा खोजे गये परमाणु का नाभिकीय चित्र है जिसमें सूक्ष्म कणों की संख्या कण परिवार के आधार पर है।

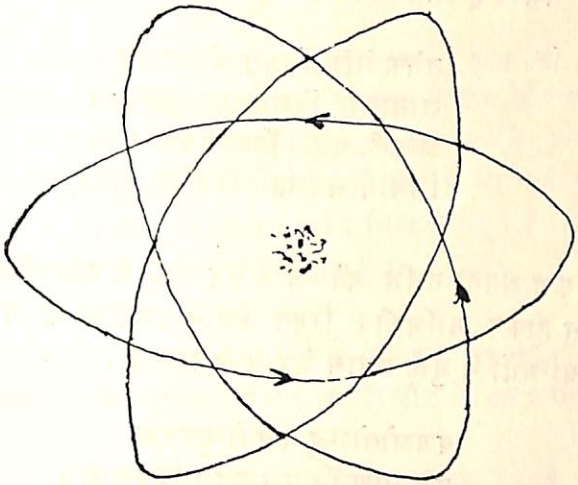

—★—

2. बैदिक कण परिवार

आधुनिक वैज्ञानिक एकात्मक ऊर्जा सिद्धान्त की तरह ही प्राचीन भारतीय वैदिक ऊर्जा सिद्धान्त है। उसके अनुसार उस अनन्त एक शक्ति का नाम ब्रह्म है। जिसका मूल कारक शुभ्र वर्ण का 'उ' नामक कण है। जिसने अपनी गति क्रम से समस्त ऊर्जा और उर्विया का निर्माण किया है। उसकी गति $3x10^{30}$ मीटर प्रति सेकिन्ड तथा उसकी शक्ति $(3x10^{30})^2$ ज्यू.व कण भार $\frac{1}{3 \times 10^{30}}$ प्रकाश कणभार के बराबर है। यह शक्ति एक तीन आवरणीय चक्र के भीतर सन्निहित है। जिसमें आठ कण और आठ प्रतिकण से युक्त छः कोष्ठक या वर्ण नाभिक हैं।

जो दो दो के समूह में जुड़कर एक दूसरे को मोह पाश में बाँधते रहते हैं। जिसमें बीस कण व बीस प्रति कण तथा दस मध्यस्थ कण हैं। जिनकी कुल संख्या पचास है तथा जो प्रत्येक चक्र में सोलह क्रम से आपस में संलग्न हैं और परिभ्रमण करते हैं।

तमेक नेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं
शातार्धारं विंशति प्रत्यराभिः।
अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैक पाशं।
त्रिमार्ग भेदं द्विनिमित्तैक मोहम्॥ श्वे. उ. 1-4

ये कण अपनी नाभि की ओर उग्र रूप से गतिशील हैं। नाभि में उदीप्त होकर नाभिकीय रिक्त स्थान पर तेजी से गति करते हैं। ये पांच ग्रन्थियों से युक्त पचास भेद वाले कण हैं।

पंचस्रोतोऽम्बुं पंचयोन्युग्रवक्रां
पंच प्राणोर्मि पंच बुद्ध्यादिमूलाम्।
पंचावर्तां पंच दुःखौघवेगां
पंचाशद् भेदां पंचपर्वामधीमः॥ श्वे.उ. 1-5

उस एकात्मक वर्ण ने इन वर्ण कणों के अपने जालों से[1] ही यह सब कुछ रचा है। रचने के बाद उनका संहार भी किया है और पुनः रचना करते हुए वह इन सबका अधिपति बना हुआ है।

एकैकं जालं बहुधा विकुर्वन्
अस्मिन् क्षेत्रे संहरत्येष देवः।
भूयः सृष्ट्वा पतयस्तथेशः
सर्वाधिपत्यं कुरुते महात्मा॥ श्वे.उ. 5-3

वह एक 'उ' ब्रह्म सब ओर गतिशील है तथा समस्त निर्माणक शक्तियों का अधिपति है। प्रकाशवान है। योनि स्वरूप है व श्रेष्ठ है।

---

[1] पाणिनीय व्याकरण में शिव सूत्रों को जाल कहा गया है। ये शिव सूत्र वर्ण कहलाते हैं।

सर्वादिश उर्ध्वमधश्च तिर्यक्
प्रकाशयन् भ्राजते यत् उ अनड्वान् ।
एवं स देवो भगवान वरेण्यो
योनि स्वभावानधितिष्ठत्येक : ।। श्वे. उ. 3-5

उसने सारे ब्रह्माण्ड की एक, दो, तीन, पांच, सात, नौ, शक्तियों के क्रम से तथा दो, चार, छः, आठ, प्रति शक्तियों के क्रम से रचना की है। उसकी शक्तियाँ और प्रति शक्तियाँ वर्ण कणों के कारण हैं। जो सदा कार्य शील रहती हैं। अनुस्वार रुप में इन वर्ण कणों के नाभिक गुरुतम हो जाते हैं और विसर्ग रूप धारण कर सदैव विखरते रहते हैं। जो शक्तियां इन वर्ण कणों से वनी हैं वे निम्न प्रकार हैं।

ब्रह्म शक्ति—इस शक्ति के कारक 'उ' कण का सूक्ष्म रूप है जो अत्यन्त वेगवान तथा हल्के नीले वर्ण का है और अंतिम शक्ति है।

प्रति ब्रह्म शक्ति—यह 'उ' कण का दीर्घ रुप है तथा प्रथम योनि है। यह उ कण से 2 गुना भारी है। यह ऊं कार नाभिकीय है। इसको माहेश्वरी कहते हैं। पांच कण और पांच प्रति कण के कारण इस शक्ति के दश रूप हैं।

विष्णु शक्ति—यह शक्ति 'इ' वर्ण कण के कारण है। इसका कण भार ब्रह्म कण का पांच गुना है। यह अनन्त शक्ति है। इसके वर्ण कण का रंग पीला हैं ।

प्रति विष्णु शक्ति—इसको वैष्णवी कहते हैं। यह 'इ' वर्ण कण से 2 गुना भारी है। इसका वर्ण कण 'ई' है। अनन्त वेगवान व शक्ति मान है। कण प्रति कण करके इसके भी दश रूप हैं। यह यह ईकार नाभिकीय है तथा ब्रह्म कण से 20 गुना भारी है।

अज शक्ति—यह शक्ति 'अ' वर्ण कण के कारण है। यह ब्रह्म कण से 25 गुना भारी है इसका रंग लाल है। यह भी अनन्त शक्तिमान व वेगवान तथा तीक्ष्ण है।

प्रति अज शक्ति—यह शक्ति 'आ' वर्ण कण के कारण है। यह अज कण से 2 गुनी भारी है। और ब्रह्म कण से 50 गुना भारी है। कण प्रति कण करके यह भी दस प्रकार की हैं। ॐकार नाभिकीय है।

इसके अलावा दो शक्तियां ऋकार और लृकार नपुंसक या न्यूट्रल शक्तियाँ हैं। इनकी प्रति शक्तियाँ एकार और ओकार अत्यधिक उत्तेजक शक्तियाँ हैं तथा केन्द्रगत शक्तियाँ हैं। अनुस्वार और विसर्ग इन सब शक्तियों के गुहतम रूप हैं जो अहंकार नाभिक हैं। इस प्रकार शक्ति प्रति शक्ति के रुप में नौ प्रकार की शक्तियाँ हैं। जिसके नौ सूक्ष्म कण, अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, अं, अः हैं। इनके नाम क्रमशः ब्राम्ही, वैष्णवी, शिवा, ऋद्धि, सिद्धि, ऐन्द्री, वाराही, चामुण्डा व ईश्वरी हैं। इन शक्तियों को सप्त धातु भी कहते हैं। धातु शक्ति धारक कणों का नाम हैं। इनमें भी पांच सतत् क्रिया शील शक्तियां हैं। जिनके मूल कण अ, इ, उ, ए, ओ हैं। इन पांच में भी सूक्ष्म शक्तियाँ तीन हैं अ, इ, उ और सबसे अन्तिम शक्ति उ है। जिसमें सब विलीन हो जाते हैं। शक्ति क्रम से वैदिक कण परिवार निम्न प्रकार है।—

वैदिक वर्ण कण परिवार

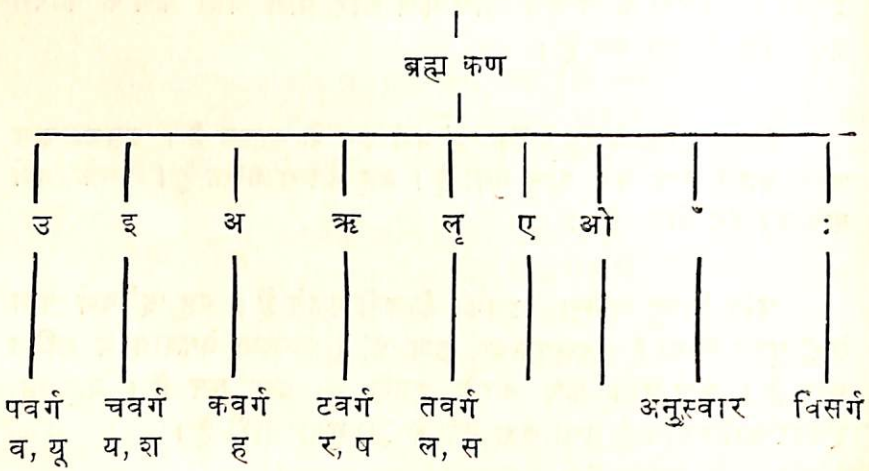

कवर्ग=क, ख, ग, घ, ङ। चवर्ग=च, छ, ज, झ, ञ।
टवर्ग=ट ठ ड ढ ण। तवर्ग=त थ द ध न।
पवर्ग=प, फ, ब भ, म।

इसमें उकार ब्रह्म नाभिक, इकार ऋषि नाभिक अकार पितृ नाभिक, ऋकार देव नाभिक, लृकार, दानव नाभिक तथा ए और ओ अहंकार नाभिक हैं। इन छः नाभिकों ने ही 'क्ष' नाभिक की रचना की हैं जिसमें मूल भूत तीन कण हैं क्ष, त्र ज्ञ। यहाँ अहंकार नाभिकीय कणों का परिपथ चित्र दिया गया है जिसमें 50 से 54 वर्ण कण हैं तथा इतने ही प्रतिवर्ण कण हैं।

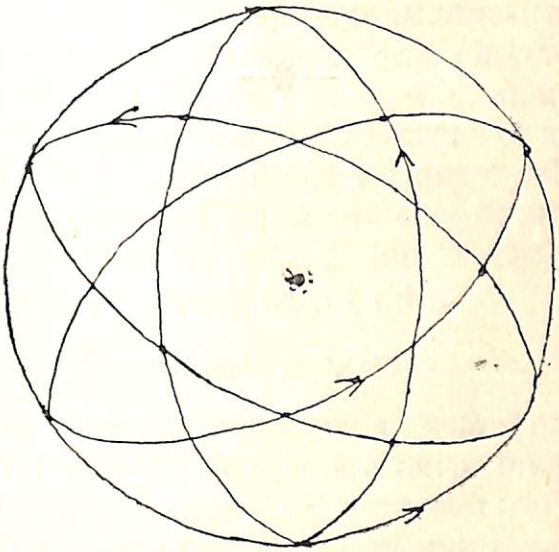

वह एक जालवान अपनी शक्तियों से इस संसार को पैदा कर उसमें शासन करते हुए अमर है। उसके शासन की यह महिमा ब्रह्मचक्र द्वारा जानी जाती है जिसको उसने मकड़ी की तरह जाल बुनते हुए बनाया है।

य एको जालवानीशत् ईशनीभिः ।
सर्वां लोकानीशत् ईशनीभिः ।
य एवैक उद्भवे सम्भवे च
य एताद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ।। श्वे. उ. 3-1

देवस्यैष महिमा तु लोके येनेदं भ्राम्यते ब्रह्म चक्रम ।।
यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः
स्वमावतो देव एकः स्वमावृणोत् ।
स नो दधाद् ब्रह्माप्ययम् ।। श्वे. उ. 6-19

—✲—

ब्रह्माण्डीय रसायन

ब्रह्माण्ड में घट रही कोई भी क्रिया तथा प्रतिक्रिया का कारण यद्यपि ब्रह्माण्डीय कण हैं तथापि इन ब्रह्माण्डीय कणों में किस तरह से आपस में संयोजन और वियोजन तथा संघटन और विघटन होता है उसका विवेचन ही ब्रह्माण्डीय रसायन है। इसके अन्तर्गत ब्रह्माण्ड में व्याप्त वर्ण कणों का आपसी व्यवहार का विवेचन है। प्राचीन भारतीय मत के अनुसार ब्रह्माण्ड के कारक कणों और प्रति कणों की कुल संख्या 108 है। जिन्हें अक्षमाला कहते हैं अक्ष का तात्पर्य मूल आत्मा से है। अक्ष ब्रह्म ग्रन्थि के भीतरी कण होने के कारण आत्मारूप हैं। इनके मेल से ही ब्रह्म ग्रन्थि बनती है। इनमें 54 कण तथा 54 प्रति कण हैं। इनके मूल स्वरात्मक संख्याओं का क्रम सूक्ष्मतम की ओर नौ[1], सात, पाँच, तीन, दो, एक है। ये समान वर्ण कणों की नाभि या योनि हैं। अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, अं, अः हैं। ये नाभियां ही वर्ण कणों को संघठित और विघटित करके नये स्वरूपों को जन्म देती रहती हैं। महर्षि पाणिनीय के अनुसार ये निश्चित नियमों के अनुसार कार्यशील रहती हैं। यथा समान वर्ण की नाभिक मिलकर समान होकर सघन हो जाते हैं तथा अत्यधिक सघन होकर विसर्गावस्था में स्वतः बिखरने लगती हैं। जैसे—

उ+उ=ऊ या 2उ

असमान वर्ण कण मिलकर नया वर्ण बनाते हैं तथा ब्रह्माण्डीय वर्ण ऊर्जा का विसर्जन करते हैं। इसमें यदि दोनों मिलने वाले संघटक समान क्रम और मात्रा के हों तो समान रूप से ऊर्जा में क्षय होते हैं यदि क्रम में असमानता है तो अपने गुण अनुसार ऊर्जा में विसर्जित होते हैं।

यथा—

$$\text{अ} + \text{इ} = \text{ए} + \frac{\text{अ} + \text{इ}}{2} \text{ ऊर्जा}$$

---

[1] नव द्वारे पुरे देही हँसो लेलायते वहिः।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च। श्वे. उ. 3-14

ई + अ = य् + अ $+\frac{\text{ई ऊर्जा}}{2}$

कुछ वर्ण नाभियाँ क्रिया शून्य होती हैं।

जैसे— ऋ + ऌ = ऋ + ऌ
ओ + ई = ओ + ई

सूक्ष्म व्यंजन कण अपना स्वरूप स्वर नाभियों के अनुसार बदलते रहते हैं क्योंकि स्वर नाभियाँ उनको निगल जाती हैं।

क् + इ = कि

इस तरह क्रिया प्रतिक्रिया करके इस वर्ण ब्रह्म ने ब्रह्माण्ड को पकाकर विभिन्न पदार्थों के रूप में उनके गुण, कर्म, स्वभाव व परिणाम के अनुसार बदला है और उनको परिवर्तित करते हुए वह उनका सचालक बन गया है।

यच्च स्वभावं पचति विश्व योनिः
पाच्यांश्च सर्वान् परिणामयेत् यः।
सर्वमेतद् विश्वमधितिष्ठत्येको
गुणांश्च सर्वान् वितियोजयेत् यः॥ स्वे. उ. 5/5

वर्णों की अत्यधिक सघनता या विसर्गावस्था या तो समान स्वर नाभिकों में बदल जाती हैं या श् ष् स् र् में बदल जाती है।

अः+ आ = 4 अ + 3अ

वर्णों की यह क्रिया अनवरत और शाश्वत रूप से चली आ रही है और चलती रहेगी। श्वेताश्वतरोपनिषद में कहा गया है कि एक रुद्रात्मक वर्ण अपनी विभिन्न शक्तियों द्वारा संसार को बना रहा है। और उसे समेट रहा है।

एको हि रुद्रो द्वितीयाय तस्थु
र्य इमांल्लोकानीशत् ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति संकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥
श्वे. उ. 3-2

—✱—

ब्रह्म कण और जीवन

ब्रह्माण्ड में व्याप्त समस्त भौतिक और जैविक पदार्थों के जीवन का आधार वर्ण कण है। हम अपनी इस पृथ्वी में जो भी रंग, रूप, गंध स्पर्श, स्वाद आदि अनुभव करते हैं। उन सबका आधार भी ब्रह्माण्ड में व्याप्त सूक्ष्म कण ही हैं। क्योंकि उस वर्णात्मक ब्रह्म ने ही अपने अनेकों वर्ण कणों के द्वारा समस्त प्राणी जगत की रचना की है चाहे वह प्राणी एक कोशिक हो चाहे अनेक कोशिक वह इनमें सदैव अनुरक्त रहता है तथा इनसे मुक्त भी होता रहता है।

अजामेकां लोहितशुक्ल कृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ।। श्ने0 उ0 4/5

इस विश्व का निर्माण करने वाला ब्रह्म कण प्राणियों के कर्म में, चिन्तन में तथा जीवन क्रम में ठीक प्रकार से समाया हुआ है। जो इसको ठीक प्रकार से प्रयोग में ला सकते हैं। वे ही दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकते हैं।

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।
हृदा मनीषा मनषाभिक्लृप्तो
य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति ।।

उस ब्रह्म ने जड़ पदार्थों के निर्माण के बाद विभिन्न तत्त्वों के संयोग से कण प्रति कण करते हुए एक, दो, तीन, चार, करके आठ तक के कण प्रति कण के प्रयोग से उनमें सूक्ष्म चेतन गुण देकर प्राणि जगत का निर्माण किया है ।

तत्कर्म कृत्वा विनिवर्त्य भूय
तत्त्वस्य तत्त्वेन समेत्य योगम् ।
एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा
कालेन चैवात्म गुणैश्च सूक्ष्मैः ।।

यह सम्पूर्ण प्राणी जगत ब्रह्म की मूल भूत पांच वर्ण कणों के सम्मिश्रण से निर्मित होने के कारण उनसे ही आवेशित होता है और उन्हीं के गुण कर्म के अनुसार चलता है। उनका ह रूपी शरीर ज्ञ रूपी प्राण से सदैव चलता रहता है ।

येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं
ज्ञः कालकालो गुणी सर्व विद्यः ।
तेनेशितं कर्म विवर्तते ह
पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखानि चिन्त्यम् ।।

समस्त प्राणी ब्रह्म चक्र में व्याप्त वर्ण कणों के द्वारा निर्मित हैं । क्योंकि जीवात्मा को बनाने वाले ब्रह्म कण हैं। ब्रह्म कणों का शरीर कणों से उचित सम्पर्क करना जो जान जाता है वह अमर हो जाता है।

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते
अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे ।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा
जुष्टस्तत स्तेनामृतत्त्वमेति ।।

शरीर रचना की मूल भूत कोशिकाओं में वर्णात्मक मूल पांच तत्त्वों का ठीक प्रकार से संयोग होने से न तो रोग होता है न बुढ़ापा आता है और न मृत्यु होती है क्योंकि शरीर की समस्त भित्तियाँ इनके संयोग से हमेशा जीवन्त होती हैं ।

पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते
पंचात्मके योग गुणे प्रवृते ।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ।।

शरीर व उसके जीवन का कारण उसके आत्म कारक ब्रह्म कण हैं जो जीव नाभिकों का निर्माण करते हैं। उसको चेतना युक्त करते हैं तथा उसे जीवन चक्र में बांधते हैं ।

स विश्वकृत् विश्वविद् आत्मयोनि
ज्ञः कालकालो गुणी सर्व विद्यः ।
प्रधान क्षेत्रज्ञपति र्गुणेशः
संसार मोक्षस्थिति बन्ध हेतुः ।।

ये जीव नाभियां आत्मकण में हुए परस्पर संयोजन और वियोजन के कारण अपने गुण कर्म स्वभाव से एक दूसरे से परस्पर भिन्न हो जाती हैं।

स्थूलानि सूक्ष्मणानि बहूनि चैव
रूपाणि देही स्वगुणैर्वृणोति ।
क्रिया गुणैरात्म गुणैश्च तेषां
संयोग हेतुरपरोऽपि दृष्टः ।।

उपरोक्त प्रकरणों से स्पष्ट है कि जीवन में ब्रह्माण्डीय वर्ण कणों का अत्यधिक प्रभाव है। किसी भी प्राणी के जीवन को बनाने वाली एक निश्चित वर्ण कण प्रक्रिया है। यदि उसका ठीक प्रकार से विश्लेषण किया जाय तो जीव नाभिकों को एक दिशा मिल जायेगी और उन्हें छीजन से और मरने से बचाया जा सकेगा। भारतीय ज्योतिष किस प्राणी का क्या वर्ण रूप है उसको प्रकट करना है। यदि इससे उदाहरण लेकर ब्रह्माण्डीय वर्ण कणों का जीवन में प्रभाव देखें तो सम्भवतः आने वाले युग में मनुष्य को बहुत लम्बी अवस्था मिल जाय।

श्वेताश्वतरोपनिषद का संदेश है कि जब मनुष्य ब्रह्माण्डीय तरंगों का प्रयोग जान जायेंगे तो उनके सारे दुःख दूर हो जायेंगे।

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ।।

—✱—

अभिव्यक्तियों का ब्रह्माण्डीय रूप

1. विभिन्न ध्वनियों का ब्रह्माण्डीय रंग

अभिव्यक्ति का श्रेष्ठ और सुगम साधन ध्वनियों का आदान प्रदान है। जो वार्तालाप, भाषण, गायन, पठन, पाठन आदि के रूप में किया जाता है। ध्वनि को बोला, सुना, और लिखा जाता है। ध्वनि के इन तीन लक्षणों पर समस्त ज्ञान राशि समाहित है।

महर्षि पाणिनि ने ध्वनि के उद्गम के विषय में कहा है जब आत्मा चराचर को ध्वनि के माध्यम से अभिव्यक्त करना चाहती है तो वह मानसिक तरंगों को शरीर में स्थित ऊर्जा में जलाकर वायु में परिवर्तित करती है और वही वायु मुखादि अवयवों से ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, अनुस्वार, और विसर्ग के स्वरूपों को धारण कर ध्वनि के रूप में स्फुटित हो जाती है। जिसे वर्ण कहते हैं। अतः ध्वनि ब्रह्माण्डीय तरंगों का ध्वनि तरंगों में रूपान्तरण ही है।

आत्मा बुद्धया समेतार्थान् मनोयुङ्गते विपक्षया।
मनः कायाग्नि माहन्ति स प्रेरयति मारुतान्॥
सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्र मापद्य मारुतः।
वर्णान् जनयते तेषां विभागः पंचधामतः॥

पाणिनीय शिक्षा

वैदिक साहित्य का विचार है कि ब्रह्माण्ड में व्याप्त समस्त ध्वनियाँ चाहे वे व्यक्त हों या अव्यक्त, श्रव्य हों या अश्रव्य, भौतिक कारणों से हों या जैविक कारणों से या किसी अन्य कारणों से होती हों उन सबका एकात्मक आधार है। तथा वे सब आभात्मक हैं। उनका एक मूलाधार वर्ण है जिसके गति क्रम से वे विविध रूपों में पैदा होती हैं और अनेक वर्णात्मक द्युति धारण करती हैं। उस एकात्मक वर्ण का नाम 'उ' है[1]। जो नीलाभ है, जिसने सृष्टि हेतु अपने को क्रमशः हिरण्य

---

[1] उद् उ इदं मामकं वचः। ऋ. वे. 10-159-1
तद् अक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् तद् अक्षरात् विविधा सौम्य भावाः॥

गर्भात्मक रूप में एक, तीन पांच सात क्रम से परिवर्तन करते हुए वर्णात्मक सृष्टि की रचना की और अनवरत संचरण शील होकर भूत भविष्य वर्तमान सबका निर्माता बन गया।

ॐ इत्येतक्षरमिदम् सर्वस्योपाख्यानम्।
भूतं भवद्भविष्यमिति सर्व अंकार एव॥ मां ण्डू० उ०

अस्तु स्रष्टा का श्रव्यात्मक रूप ध्वनि है और चिन्हात्मक रूप लिपि है। ध्वनि और लिपि से रहित ब्रह्म शून्य है। जो सृष्टि हीन है। अतः आज जो भी हमारे पास भाषायें हैं वे सब उच्चरण अर्थात् 'उ' की गति के कारण है। यह चर अचर अपनी ध्वनियों से उस अनन्त उ[1] के किसी न किसी आभात्मक रूप को ही प्रकट करता है। यह रूप यदि स्वाभाविक होता है तो सुखकर होता है और अस्वाभाविक होता है तो हानिकार चित्र संख्या 2 में ब्रह्माण्डीय तरंगों का स्वाभाविक गतिक्रम दिया गया है।

प्रश्नोपनिषद में ध्वनि के स्वाभाविक शुद्ध स्वरूपों का क्रम लोहित से शुभ्र वर्ण तक माना गया है। मुण्डकोपनिषद ने परा और अपरा क्रम से ध्वनियों के दो क्रम बनाये हैं एक उ की ओर गति उर्ध गति और दूसरी अ की ओर गति अधोगति। महर्षि पाणिनीय के माहेश्वर सूत्रों का क्रम उर्ध क्रम ही है। उर्ध क्रम ही स्वाभाविक है।

ब्रह्माण्ड में ध्वनि कहीं भी हो उसका रूप संस्कृत वर्ण माला के अनुरूप ही होगा। क्योंकि यह सृष्टि के सास्वत नैसर्गिक वर्ण क्रम पर बनायी गयी है तथा यह सृष्टि के क्रम का एक विधान को प्रकट करती है। ब्रह्माण्ड के स्वरूप के साथ साथ ही ध्वनियों के भी अनन्त स्वरूप हैं लेकिन मूल भूल रूप में यह 54 प्रकार की हैं।[2]

---

[1] उ इदं मामकं वचः। ऋ. वे. 10-159-1

[2] कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ऋ, ॠ, लृ, लॄ, ओ, औ, अं, अः, वी, यू, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष, त्र, ज्ञ.

जो सृष्टि रचना में लगे मूलभूत कणों के नाम पर और उनके रंग क्रम को उद्दीप्त करने के गुणों के आधार पर बनायी गयी हैं। पीछे यद्यपि ध्वनियों के रंगात्मक रूपों का यत्र तत्र वर्णन कर चुके हैं। यहाँ विश्व की भाषाओं में प्रत्युक्त मूल ध्वनियों के साथ उनका सामुहिक व स्पष्ट विवरण हिन्दी वर्णमाला में उच्चारित ध्वनियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करते हुए उनके रंग क्रम को प्रकट करने का प्रयत्न कर रहें हैं।

पृष्ठ संख्या 111 में लाल वर्ण की ध्वनियाँ हैं।
पृष्ठ संख्या 112 में गहरे लाल वर्ण की ध्वनियाँ हैं।
पृष्ठ संख्या 113 में नारंगी रंग की ध्वनियाँ हैं।
पृष्ठ संख्या 114 में गहरे नारंगी रंग की ध्वनियाँ हैं।
पृष्ठ संख्या 115 में पीले रंग की ध्वनियाँ हैं।
पृष्ठ संख्या 116 में गहरे पीले रंग की ध्वनियाँ हैं।
पृष्ठ संख्या 117 में हरे रंग की ध्वनियाँ हैं।
पृष्ठ संख्या 118 गहरे हरे रंग की ध्वनियाँ हैं।
पृष्ठ संख्या 119 मे नीले रंग की ध्वनियाँ हैं।
पृष्ठ संख्या 120 मे गहरे नीले रंग की ध्वनियाँ हैं।
पृष्ठ संख्या 121 मे जामुंनी रंग की ध्वनियाँ हैं।
पृष्ठ संख्या 122 में गहरे जामुनी रग की ध्वनियाँ हैं।
पृष्ठ संख्या 123 मे भूरे रंग की ध्वनियाँ हैं।
पृष्ठ संख्या 124 में गहरे भूरे रंग की ध्वनियाँ हैं।

उपरोक्त ढंग से विभिन्न भाषाओं की मूल ध्वनियों का विवेचन करने से यह स्पष्ट योता है कि भारतीय वर्ण माला पूर्ण रूप से वैज्ञानिक है तथा वह ब्रह्माण्डीय वर्ण कणों के आधार पर बनायी गयी है।

विश्व की अन्य भाषाओं मे यह विशेषता नहीं है। उनमें कुछ ही ध्वनियाँ शुद्धाभ हैं भी तो उनमें कोई क्रम भी नही हैं उन्हें वर्ण नहीं संयुक्त वर्ण ही कहा जा सकता है।

हल्के लाल रंग की ध्वनियाँ

भाषा	ध्वनियाँ
संस्कृत	अकुहविसर्जन्यांकण्ठः
हिन्दी	अ क ख ग घ ङ ह :
अरबी	-------
अंग्रेजी	A अ
रूसी	A अ ग K क
जर्मनी	A अ
चीनी	अ क ख ग
फ्रांसीसी	A अ K क H ह
हंगेरी	A अ K क
बल्गेरियाई	A अ K क ग ख
स्पेनिस	A अ J ख क

गहरे लाल रंग की ध्वनियाँ

भाषा	ध्वनियाँ
संस्कृत	आ का खा गा घा ङा हा
हिन्दी	आ का खा गा घा ङा हा
अरबी	काफ
अंग्रेजी	R आर
रूसी	X ख:
जर्मनी	A आ
चीनी	आ
फ्रांसीसी	A आ H हा K का
हंगेरी	a' आ
बल्गेरियाई	A आ
स्पेनिस	A आ

हल्के नारंगी रंग की ध्वनियाँ

भाषा	ध्वनियाँ
संस्कृत	य ए अवर्ग + इवर्ग
हिन्दी	य ए अवर्ग + इववर्ग
अरबी	ते जे ये
अंग्रेजी	A ए J जे Z जेड
रूसी	ये ज च श इश्च
जर्मनी	D डे E ए K की T ते
चीनी	ए य
फ्रांसीसी	C त्से E ए D डे G गे J ज्य Z त्स
हंगेरी	d डे J य t ते ny न्य zs ज्य
बल्गेरियाई	य
स्पेनिस	C से D डे E ऐ G गे n एन T टे x एक्से

गहरे नारंगी रंग की ध्वनियाँ

भाषा	ध्वनियाँ
संस्कृत	ऐ
हिन्दी	ऐ
अरबी	हे खे
अंग्रेजी	I आई K के L एल N एन
रूसी	ऐ या
जर्मनी	L एल N एन R ऐर
चीनी	--------
फ्रांसीसी	N एन X इक्स
हंगेरी	h हे
बल्गेरियाई	या
स्पेनिस	E ऐ R एरे M एमे N एने Z जेस्टा

हल्के पीले रंग की ध्वनियाँ

भाषा	ध्वनियाँ
संस्कृत	इचुयशानां तालु
हिन्दी	इ च् छ् ज् झ् ञ् य् श्
अरबी	-------
अंग्रेजी	E इ
रूसी	इ
जर्मनी	I इ
चीनी	इ
फ्रांसीसी	I इ
हंगेरी	i' इ
बल्गेरियाई	इ
स्पेनिस	I इ

गहरे पीले रंग की ध्वनियाँ

भाषा	ध्वनियाँ
संस्कृत	ई
हिन्दी	ई
अरबी	----
अंग्रेजी	I टी
रूसी	u ई
जर्मनी	Y ई
चीनी	----
फ्रांसीसी	Y ई
हंगेरी	ई
बल्गेरियाई	ई
स्पेनिस	Y ई

हल्के हरे रंग की ध्वनियाँ

भाषा	ध्वनियाँ
संस्कृत	ऋटुरषानां मूर्धा चवर्ग + टवर्ग
हिन्दी	ऋ ट् ठ् ड् ढ् ण् ष् र् चवर्ग + टवर्ग
अरबी	–
अंग्रेजी	B बी C सी D डी P पी V वी
रूसी	–
जर्मनी	–
चीनी	–
फ्रांसीसी	–
हंगेरी	–
बल्गेरियाई	–
स्पेनिस	P पी

गहरे हरे रंग की ध्वनियाँ

भाषा	ध्वनियाँ
संस्कृत	लृतुलसानां दन्ताः चवर्ग + टवर्ग + तवर्ग
हिन्दी	लृ त् थ् द् ध् न् स् चवर्ग + टवर्ग + तवर्ग
अरबी	–
अंग्रेजी	U यू
रूसी	यू
जर्मनी	–
चीनी	–
फ्रांसीसी	–
हंगेरी	ty त्यू
बल्गेरियाई	यू
स्पेनिस	–

हल्के नीले रंग की ध्वनियाँ

भाषा	ध्वनियाँ
संस्कृत	उपूपध्मानीयानामोष्ठौ
हिन्दी	उ प् फ् ब् भ् म्
अरबी	–
अंग्रेजी	–
रूसी	उ
जर्मनी	–
चीनी	उ
फ्रांसीसी	–
हंगेरी	ᴜ उ
बल्गेरियाई	उ
स्पेनिस	ᴜ उ

नोट :- संस्कृत सूत्रों की व्याख्यात्मक ध्वनियाँ ही ली जानी चाहिए। यथा—
उपूपध्मानीयानामोष्ठौ = उ और पवर्ग

गहरे नीले रंग की ध्वनियाँ

भाषा	ध्वनियाँ
संस्कृत	ऊ*
हिन्दी	ऊ
अरबी	–
अंग्रेजी	–
रूसी	–
जर्मनी	u ऊ
चीनी	ऊ
फ्रांसीसी	u ऊ
हंगेरी	–
बल्गेरियाई	–
स्पेनिस	–

* अकः सवर्णे दीर्घः

हल्के जामुनी रंग की ध्वनियाँ

भाषा	ध्वनियाँ
संस्कृत	ओ व अ + उ अवर्ग+पवर्ग
हिन्दी	ओ व
अरबी	–
अंग्रेजी	o ओ
रूसी	प o ब B व
जर्मनी	o ओ W व्व
चीनी	ओ
फ्रांसीसी	o ओ V व W व्व
हंगेरी	o ओ
बल्गेरियाई	o ओ ब
स्पेनिस	o ओ

गहरे जामुनी रंग की ध्वनियाँ

भाषा	ध्वनियाँ
संस्कृत	औ
हिन्दी	औ
अरबी	वाव
अंग्रेजी	–
रूसी	–
जर्मनी	V फौ
चीनी	–
फ्रांसीसी	–
हंगेरी	–
बल्गेरियाई	–
स्पेनिस	–

हल्के भूरे रंग की ध्वनियाँ

भाषा	ध्वनियाँ
संस्कृत	र ल श ष स
हिन्दी	र ल श ष स
अरबी	अलिफ बे ते से जीन दाल जाल रे जे ज्वे ऐन गैन फें मीम नून
अंग्रेजी	F एफ L एल M एम N एन Q क्यू S एस W डब्ल्यू X एक्स Y वाई Z जेड
रूसी	यो एल एर एस त एफ ट्ज
जर्मनी	B बे L एल M एम N एन Sएस
चीनी	स श ल
फ्रांसीसी	R एर
हंगेरी	f एफ l ल Z ज Zs ज्ये
बल्गेरियाई	–
स्पेनिस	बे L ल ll ल्य m एम n एन S स Vवें xएक्सें

गहरे भूरे रंग की ध्वनियाँ

भाषा	ध्वनियाँ
संस्कृत	क्ष त्र ज्ञ
हिन्दी	क्ष त्र ज्ञ
अरबी	सीन शीन स्वाद ज्वाद त्वे काफ लाम
अंग्रेजी	–
रूसी	–
जर्मनी	–
चीनी	–
फ्रांसीसी	–
हंगेरी	–
बल्गेरियाई	–
स्पेनिस	–

नोट :- ध्वनियों के रंगों का स्वरूप उनके उच्चारण के आधार पर है। भूरे रंग की सैकड़ों ध्वनियाँ हैं। उसमें मात्रानुसार और सन्धि के अनुसार वर्ण क्रम बदलता रहता है। संस्कृत साहित्य में जहाँ मूलभूत वर्ण 54 हैं वहीं उनके परिवर्तित स्वरूप 34560 हैं। उपरोक्त वर्ण क्रम में जो भी अन्य भाषाओं की ध्वनियाँ दा गयी हैं, वे पूर्ण नहीं हैं। उनमें व्यापक खोज की आवश्यकता है।

* पर सन्निकर्षः संहिता।

सम्पूर्ण अरबी भाषा संयुक्त वर्णमाला की है। पवित्र कुरान[1] के संकेतों से ज्ञात होता है कि यह वैदिक संस्कृत की अपभ्रंश भाषा रही होगी। प्राचीन इतिहास भी इस बर्तमान स्लामिक क्षेत्र को दक्षिण कुरु के नाम से जानता रहा है[2]।

यूरोपीय भाषाओं में अंग्रेजी में कुछ ही वर्ण शुद्धाभ हैं। शेष सभी संयुक्त वर्ण हैं। इसी तरह रूसी, जर्मनी, फ्रांसीसी, स्पेनी, बल्गेरियन आदि भाषाओं के वर्ण क्रम में संस्कृत का प्रभाव तो है लेकिन उनका ध्वनि क्रम शुद्धाभ नहीं है।

अतः उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि ध्वनि स्वाभाविक व सार्वभौम है। इस पृथ्वी में ही नहीं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ध्वनि का क्रम और स्रोत एक है। उसका एक ही परिवार व एक ही पिता है। भेद केवल स्थूल रूप मे प्रकट होने वाले लिंगात्मक रूप में है। सम्पूर्ण भाषाओं की मूल ध्वनियाँ समान व एक हैं। उनका सूक्ष्म ब्रह्माण्डीय लिपि क्रम भी समान है।

—✻—

2. अन्य अभिव्यक्तियों का ब्रह्माण्डीय रूप

जिस माध्यम से प्राणी जगत अपनी मन की भावनाओं को दूसरों के सामने प्रकट करता है तथा दूसरों की मनोदशा को जानता है वह माध्यम ही अभिव्यक्ति है। इसमें शारीरिक मुद्रा, योग, नृत्य, गायन, वादन, व्यायाम, अध्ययन, चिन्तन, लेखन और अन्य कला कौशलों का प्रदर्शन आदि सन्पूर्ण क्रियायें व प्रतिक्रियायें आती हैं।

---

[1] अल् आहुः अक् वरः = अल्लाहु अकबर।
सत् अल् आहुः अल् एहि ईशः अलम् = सल्लाहु अलैहिस्लाम।
सत् अल् आहुः अल् एहि वसत् अलम्=सलल्लाहु अलैहि वसल्लम।

[2] कुरुः एषः = कुरैश अपभ्रंश अ है रव जिनका = अरव/अरब

अभिव्यक्ति में ध्वनि संयोग या शब्द का स्थान महत्वपूर्ण है। ये शब्द ब्रह्माण्डीय आभाओं के संयोग से विशेष संरचना में लगे होने के कारण अपना निश्चित तात्पर्य प्रकट करते हैं। जिनकी अपनी शक्ति होती है जो वातावरण को प्रभावित करते हैं। वैदिक साहित्य में ये शब्द अपनी विशेष क्रियाओं के कारण दैवत और नैगम दो वर्गों में विभक्त हैं। इन दोनों की व्यवस्था ऋक्, यजु, साम के अन्तर्गत की जाती है। ऋक् का तात्पर्य शब्द का मूल रूप है। यजु का तात्पर्य शब्द की गति है तथा साम का तात्पर्य शब्द की ऊर्जात्मक स्थिति है। इस तरह शब्द सृष्टि क्रम का विवेचन करता है[1]।

ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः
सर्वागति र्यजुषी हैव शश्वत्।
सर्वः तेजः साम रूपं हि शश्वत्
सर्वं हीदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम्।।

निरुक्तकार मुनि यास्क जी ने शब्दों के निर्माण की क्रिया को पाँच प्रकार से बतलाया है।

वर्ण का आगमन, वर्ण का विपर्यय, वर्ण विकार, वर्ण नाश, वर्ण का धातु से अतिशय संयोग से शब्दों का निर्माण होता है। धातु का तात्पर्य मूल भूत वर्ण कणों से है। इस धातु को सप्त वर्णीय उर्या भी कहा जाता है। उर्या वर्णावरण है। वर्णों को उर्या क्रम में ध्वनियों के माध्यम से रखना छन्द कहलाता है। इन छन्दों को क्रमिक गति देकर स्थायी रूप देना मंत्र है तथा इस मंत्र से इच्छित आनन्द को प्राप्त करना या उसका अनुभव करना रस है।

परमात्मा के शान्त स्वरूप में जब स्वतः सृष्टि की कामना जागी तभी रस निष्पत्ति हुई और वह सृष्टि कर्म हेतु श्रृंगार, हास्य, वीर, रौद्र, भयानक बीभत्स, करुण, और अद्भुत रसों में भाव, विभाव,

---

[1] यतेतन्मण्डलं तपति तन्महदुक्थम्। ता ऋचः स ऋचां लोकः।
अथ यदेतत् अर्चिदीप्यते तन्महाव्रतम् तानि सामानि स साम्नां लोकः।
सैषा त्र्येव विद्यातपति तद् यजुः।। श. ब्रा. अ. 5
मनो यजुः प्रपद्ये। यजुर्वेद

अनुभाव और व्यभिचारी भाव रखते हुए सर्वत्र व्याप्त हो गयी[1]। ये वर्ण ब्रह्म के शुभ्र शान्त स्वरूप से नीले, हरे, पीले, नारंगी, लाल, जामुनी, भूरे, बहुरंगी रूपों में क्रमशः शान्त, श्रृंगार, हास्य, वीर रौद्र, भयानक, वीभत्स, करुण और अद्भुत रूपों में व्याप्त हो गये। अतः हमारी अभिव्यक्तियां जब ब्रह्म के तत्सम्बन्धी कण को प्रकट करती हैं तो उसी रस का हमें आभास होने लगता है। यहाँ चित्र संख्या–3 में वियोग श्रृंगार का संयोग श्रृंगार में परिवर्तित होने का वर्णात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया हैं। इसमें प्रत्येक शब्द को एक रंग के चाप में तथा गिरते हुए अश्रु बिन्दु के रूप में दिखाया गया है जिसे ऊपर से नीचे की ओर दिए गये निर्देश के अनुसार पढ़ा जा सकता है। चित्र संख्या-4 में ऊर्जा की उद्दीप्तता को प्रकट करते हुए ऋग्वेद के प्रथम मंत्र का रंगात्मक रूप दिया गया है, जिसे दिए गये निर्देश के अनुसार पढ़ा जा सकता है।

जब शब्दात्मक वर्णों को हम नाद में बदल कर रसानुभूति करते हैं तो संगीत की उत्पत्ति होती है। संगीत नाद के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति है। जब आहत नाद स्वर समन्वय से अनाहत नाद में परिवर्तित होता है तो वह संगीत बनता है।

ध्वनियों को आरोह और अवरोह के द्वारा या ह्रस्व दीर्घ प्लुत के अनुसार वर्णानुक्रम से उसका आभात्मक स्वरूप प्रकट करके उसे स्थायित्व देना और उससे मानस पटल को परिस्थिति से अनुरंजित करना ही संगीत का कार्य है। वाद्य उपकरणों और शारीरिक भंगिमाओं का ध्वनियों के साथ एकाकार कराकर उससे स्वर क्रम द्वारा इच्छित वर्ण या आभावृत को प्राप्त करना ही राग है। भरत

---

[1] स्वं स्वं निमित्त मासाद्य शान्त एको पलीयते ।।
भावविभाव अनुभाव व्यभिचारी भाव संयोगात् रस निष्यत्ति ।
अभिनव भारती

श्रृंगार हास्य करूण रौद्र वीर भयानकाः ।
बीभत्साद्भुत् संज्ञौ नेत्यष्टौ नाटये रसास्मृताः ।।
श्रृंगारादि्ध भवेद्हास्यो रौद्राच्य करुणो रसः ।
वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्ति बीभत्साच्च भयानकः ।।
भ. ना. शा.

मुनि के अनुसार इस प्रकार उत्पन्न किये राग 6 प्रकार के हैं[1]। हिरण्य-गर्भ की प्रत्येक आभा से एक एक करके राग उत्पन्न हुए अतः हिरण्य-गर्भ की निश्चित आभा जिस राग से जागृत होती हैं वह उस आभा का राग कहलाता है। इस तरह प्रत्येक राग का अपना रंग है। सम्पूर्ण संगीतात्मक स्वरूपों के स्वर क्रम हैं। इन स्वरों को तालवद्ध व लयात्मक क्रम से आरोह एवं अवरोह के द्वारा वर्ण्य विषय का मनोहारी आभात्मक रूप प्रकट करना ही आलापक या गायक का कौशल है। यद्यपि कोई भी राग किसी भी स्वर से उठाया जा सकता है लेकिन जब तक स्फुटित राग का अपना आभा स्वर स्पष्ट नहीं होगा तो वह राग वर्ण्य विषय की स्थिति को उद्दीप्त नहीं कर सकेगा। इसी हेतु संगीत में सात आभा स्वर प्रयोग में लाये जाते हैं। और उनको परिस्थित के अनुसार आन्दोलित करके वांच्छित स्वरूप प्रकट किया जाता है। उदाहरण स्वरूप भैरव राग को देखिये यह रात्रि के अन्तिम पहर पर अलापा जाने वाला राग है। जो शुभ प्रभात के आगमन का सूचक है तथा रात्रि रूपी बुराइयों का अन्तिम अवशेष है। यह संहार के बाद सृजन का राग है। चित्र संख्या 5 इस राग के वर्ण क्रम को प्रकट करती है जिसे निर्दिष्ट निर्देश के अनुसार पढ़ा जा सकता है।

—✱—

---

[1] षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम पंचम, धैवत और निषाद।
योऽयं ध्वनि विशेषस्तु स्वर वर्ण विभूषितः।
रंजको जन चित्तानां स रागः कथितो बुधैः॥
गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते।
नृत्यं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवृति च॥
मेलः स्वर समूहः स्यात् रागः शक्तिमान॥
रागः क्रियोच्यते वर्णः। संगीत रत्नाकर

ब्रह्माण्डीय प्रभाव से मनस्थिति

प्राणी मात्र की मनोदशा ब्रह्माण्डीय क्रियाओं के परिणाम स्वरूप ही हैं। मन पर उठने वाले विचारों का आधार ब्रह्माण्डीय तरंगें हैं। जो राग द्वेष ईर्ष्या क्रोध लोभ मोह ममता वासना वन्दना निन्दा घृणा आदि अनेकों स्थितियों को उत्पन्न करती रहती हैं। अतः सारे दुःख व सुखों का कारण मन ही है[1]।

मन जो मनुष्य को जागृत अवस्था में व सुप्तावस्था में दूर दूर की सैर करा देता है। जो प्रकाश के बाद की श्रेष्ठ स्थिति है तथा अत्यन्त वेग वान है[2]। जिस मन में सभी ज्ञान भाव विचार तथा शब्द रथ के पहिये की तरह चक्रीय रूप में गतिशील रहते हैं। जिसमें ब्रह्म की सारी सृष्टि का ज्ञान आश्रित है। जो क्षीगता रहित है। हृदय गम्य है और अच्छे रथ वान की तरह सम्पूर्ण चर अचर को गतिशील करता है। जो अपरिमित है। ऋत् है। ज्योतिष्मान है। सृष्टि के प्रत्येक अंश का आभावृत है। स्वाभाविक क्रम में ब्रह्माण्ड के अन्य स्वरूपों से संवेदनीय रूप में सम्पर्कशील है। जो काल चक्र और परिस्थितिवश रूपान्तरित होता रहता है। मन आभागम्य है। आभायें सृजन और संहार में सतत कार्यरत होने के कारण ऊर्ध्व ओर अधःक्रम में चलती ही रहती हैं और रूपान्तरित होती ही रहती हैं। उनका अधोक्रम क्रमशः नीला, हरा, पीला, नारंगी, लाल, जामुनी और भूरा आभामय है। ऊर्ध्व क्रम भूरा जामुनी लाल, नारंगी, पीला, हरा और नीलाभ है।

---

[1] मनः एव मनुष्याणाम् कारणं सुख दुःखयोः।

[2] यज्जाग्रतो दूरमुदैति देवं तद् उ सुप्तस्य तथैवेति।
यस्मिन् ऋचः साम यजूषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यश्मिश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।
य. वे. 34-5
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान् नेनीयतेऽभि अशुभिर्वाजिनऽइत।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठ तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु।।
य. वे. 34-6
मनो ब्रह्मः। गो. ब्रा. 1-2-10 मनः एव सर्वम्। गो. ब्राः 1-5-15
मनः पितरः। श. ब्रा. 14-4-3-13

यद्यपि समस्त सृष्टि धूसर या भूरे रंग की है तथापि वह अपने गुणानुसार निश्चित आभावृत में रहती है। जिससे भिन्नता बनी रहे इस भिन्नात्मक अभावृत के कारण ही व्यक्तिगत अन्तर होता है। यह यों भी कहा जा सकता है कि भिन्न परिवृत भिन्न प्रभाव व प्रवृतियों का सूचक है जो किसी के गुणों और दोषों का परिचायक है। वदि उसके परिवेश में बाह्य जगत से उसी के समान आभातरंग आकर सम्पर्क करती है तो उसके गुणों में उद्दीप्ता आ जाती है यदि बाह्य जगत से विपरीत आभा तरंग आकर मिलती है तो उसकी स्वाभविकता में न्यूनता आ जाती है। यदि यह विशेषता उर्धगत आभा के क्रमिक स्वरूप के कारण है तो व्यक्ति विशेष की मनोदशा अच्छाई की ओर है। यदि वह आभा अधोक्रम की है तो मालिन्य की सूचक है। चित्र सं. 2 में आभाओं का उर्ध व अधोक्रम दिया गया है। तीर का सकेत आभा गति को प्रकट करता है।

हरे रंग की आभा महापुरुषीय होती है। जो सृजन एवं कल्याण में व्यक्ति को रत रखती है। जिसका सांसारिक कर्म या अधोगत रूप जगत का पोषक होता है तथा अध्यात्मिक कर्म ब्रह्मात्मक होता है। फल स्वरूप उसका गुणगान युग युगों तक होता रहता है। जितने भी संसार में महापुरुष हुए हैं जिनके मन में प्राणिमात्र के लिए प्रेम था वे सब इसी परिवृत में आते हैं। चित्र संख्या 6 का महा पुरुषों की मनोदशा का आभात्मक रूप है। तीर का संकेत आभा की गति को प्रकट करता है। यह ही सतो गुण का रूप है[1]।

जिनका मनन चिन्तन सामाजिक स्थिति को बनाये रखना होता है। जो स्वयं के साथ-साथ अपने परिवेष के पोषण के प्रति जागरुक होता है। जिसकी उर्ध गति संत प्रवृति की होती हैं और अधोगति स्वार्थ साधक की होती है। यह राजस गुण का चिन्ह हैं और मध्यम

---

[1] अनन्तं वै मनः। श. ब्रा. 14-6-1-11
अपरिमिततरमिव हि मनः परिमिततरेववाक्। श. ब्रा. 1-4-4-7
मनो वा ऋतम्। जै. उ. 3-36 5
स. एषः हृदः कामानां पूर्णो यन्मनः। जै. उ. 1-58-3
भिन्न रुचिर्हि योकः।
सतः संसृतं भवति। एको भूयं सृतं भवति।

पुरुष की प्रवृति का सूचक है। यही आम आदमी है। जिसका मनोवर्ण या आभावृत चित्र संख्या 6 में पीले रंग से प्रकट किया गया है। प्रस्तुत चित्र में तीर का संकेत आभा गति को प्रकट करता है[1]।

उत्तेजक विचारों से स्वयं के साथ-साथ औरों को पीड़ित करने की उत्कष्ठा। मात्र अपना ही उदर पोषण करना और उसी में संतोष करने की इच्छा तमो गुणी व्यक्ति की होती है। यह अपने ऊर्ध्व क्रम में सामाजिक तथा अधो क्रम में खूंखार अपराधी होता है। यह अधम व्यक्ति है। इसका मनो आभ नारंगी वर्ण का होता है। प्रस्तुत चित्र संख्या 6 का नारंगी वृत इसी प्रकार की मनोदशा का है। तीर का संकेत आभा क्रम को प्रकट करता है।

किसी भी व्यक्ति का आभावृत उसकी मनोवृत्ति का परिचायक है हमेशा अच्छे लोगों की मानसिक तरंग स्पष्ट और उत्कर्ष की ओर होती है तथा दुराचारियों की मानसिक तरंग धूमिल और अधोगत होती है। खूंखार अपराधी डाकू चोर बलात्कारी हत्यारे अन्य और जघन्य कार्य करने वालों की मानसिक तरंग लाल रंग की होती है।

यद्यपि मानसिक गति या तरंग को नापने या देखने के हमारे पास यंत्र नहीं हैं तथापि किसी व्यक्ति द्वारा उच्चारित शब्दों के वर्णों की आभा निकाल कर हम उसके खान-पान रहन-सहन संगति और चरित्र तथा उसका प्रभाव ज्ञात कर सकते हैं।

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो, हर्षमाणा सोऽधृषिता मरुत्वः।
तिग्मेषव आयुधां संशिशानां, अभिप्रयन्तु नरो अग्निरूपाः।

हे मन्यु तुझे प्राप्त कर तेजस्वी लोग तेरे तेज से प्रसन्नता के साथ समस्त बुराइयों को दूर करते हैं।

मानसिक एकाग्रता में प्रत्येक आभावृत स्थिर और शक्तिशाली हो जाता है। अतः जिस आभा वृत में लगातार मन की स्थिरता हो

---

[1] ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्य गुण वृत्तिस्था अधोगच्छन्ति तामसाः। गीता 14-18

जायेगी वही गुण व्यक्ति प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। आभावृत को स्थिर करने की अवस्था को ही वेद ने मन्यु कहा है[1]।

गीता में इसे ही मनोयोग कहा गया है। और प्रयत्नपूर्वक उसकोसुदृढ़ करने का उपदेश दिया है[2]।

—✲—

---

1 मन्युर्मन्यतेर्दीप्तिकर्मणः, क्रोध कर्मणो वध कर्मणो वा, मन्यन्त्यस्मानविषयः"।

2 चंचल हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्। गीता-6-34
असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते। गीता-6.35
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इतिमेमतिः
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तमुपायतः। गीता-6-36

आभात्मक शब्द कोश रचना विधि

यह आभात्मक या रंगात्मक शब्द कोश विश्व में पहली बार बनाने का प्रयास है। यह उच्चारित ध्वनियों के रंगो के आधार पर बनाया गया है। अ. इ. उ. इन तीन मूल भूत स्वरों के रंगों को खोजने के बाद ही पाणिनीय व्याकरण के आधार पर अन्य ध्वनियों को भी आभात्मक स्वरूपों में निरुपित किया गया है। जैसे अकुहविसर्जनीयानाम् कण्ठः इस सूत्र के आधार पर अ, कवर्ग, ह, विसर्ग, एक ही वर्ण या रंग के हैं। क्योंकि इनके उच्चारण में समानता है। समान उच्चारित वर्ण समान रंग के हैं यह पाणिनीय के इस सूत्र 'तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम्' से भी स्पष्ट होता है कि समान प्रयत्न के वर्ण समरूप हैं।

व्यंजन लाल, पीली, नीली आभाओं की मिश्रत संक्रिया से उत्पन्न हैं अतः स्वर जुड़ने से पूर्व अपने मूल रूप में होते हैं। और अपने वर्ग के वर्ण को अधिक प्रकट करते हैं। साथ ही इनसे जो स्वर आकर मिलता है ये उसी के स्वरूप को प्रकट करते हैं। यथा प् जो नीली आभायुक्त स्वरूप है, लेकिन वह जब प् + अ=प बन जाता है तो लाल रंग की चमक को ही प्रकट करने लगता है। इसी तरह इ की मात्रा लगने पर यह पीले रंग की झलक देता है[1]। यथाः—

प्+इ=पि =नीला+पीला=हरेपन में पीला

चूंकि अ, इ, उ ही मूल वर्ण या रंग है। ये क्रमशः लाल, पीले, और नीले हैं। इनका किसी भी वर्ण या व्यंजन के साथ जुड़ना उसको अपने अनुसार बना लेना है। यथा :—

प्+अ=प=नीला +लाल=गुलाबी

प् +उ=पु=नीला +नीला=गहरा नीला

स्वर अपनी मात्रा के क्रम से गहरे व हल्के रंग का होता है। जैसे—

अ=लाल आ=अधिक लाल अ^3=गहरा लाल

अं=कालापन लिए लाल अः=स्वरुप बदलता हुआ लाल

---

[1] वर्ण-ग्रहणे वर्ण जाति ग्रहणम्।
वर्णः ग्रहणं च सर्वत्र ।। वा० 428

जैसा स्वर होगा वैसा ही उसका स्वरूप या रंग होगा अ इ उ के अलावा अन्य स्वरों के लिए सन्धि नियमों का पालन किया गया है।

अ+इ=ए

लाल+पीला=नारंगी

इसी तरह व्यंजनों के वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम वर्ण का स्वरूप प्रथम से पंचम तक क्रमशः गुरुतर मानकर प्रकट किया गया है। व्यंजन अपने वर्ग के स्वर से आधा अर्थात् हल्की कान्ति वाले हैं[1]।

वर्ग तालिका के वर्णों का रंग

वर्ग	क्रम संख्या					रंग
	1	2	3	4	5	
क	क्	ख्	ग्	घ्	ङ्	लाल
च	च्	छ्	ज्	झ्	ञ्	पीला
ट	ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्	हरा
त	त्	थ्	द्	ध्	न्	गहरा हरा
प	प्	फ्	ब्	भ्	म्	नीला

अन्य वर्णों के रंग

य, ए, ऐ, = नारंगी व, ओ, औ = जामुनी

स वी श, ष ऋ, लृ = हरा र, ल = भूरा :, ह= लाल

[1] ऋकार लृकारयोः सवर्ण विधिः। वा. 131
व्यंजनाः अर्ध मात्रकम् ।।

आभात्मक शब्द कोश का प्रारूप

अंक

अंगी

अंटी

अन्त

अन्त्र

अन्ध

अम्बा

अम्बु

अम्भ्

अंश

अंशु

आग

आगा

आज

आठ

आड़

आड़ा

आत्म

आदि

आद्य

आन

आध

आधि

आना

आप

आब

आभा

आम

आम्र

आय

आया

आयु

आरा

आरी

आर्द्र

आर्य

आर्ष

आला

आलि

आलू

आल्हा

आव

आशा

आशु

आस

आह

आहू

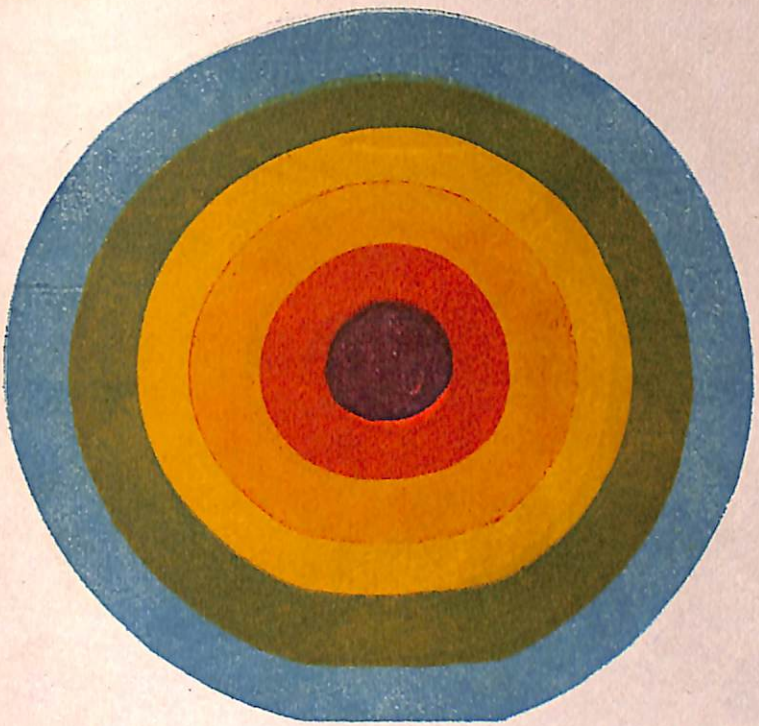

चित्र संख्या - 1

ॐ ब्रह्मा देवानाम् प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ।।
मु. उ.

योनिष्ठ इन्द्रः निषदे अकारि ।। ऋ. 1–104–1

आत्मा देवानाम् भुवनस्य गर्भो ।। ऋ. वे. 10 मण्डल

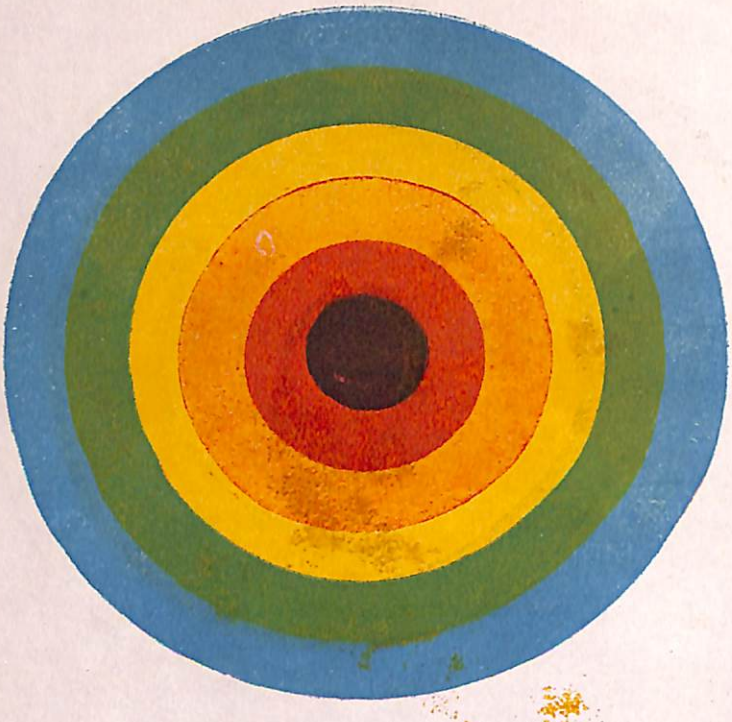

चित्र संख्या - 2

यहाँ आभाओं का ऊर्ध्व क्रम और अधो क्रम प्रकट किया गया है। ये आभायें बाहरी वृत की ओर क्रमशः ऊर्ध्व गतिशील हैं और बाहर से भीतरी वृत की ओर क्रमशः अधोगत हैं।

चित्र संख्या - 3

जब निकट से नियति ने निहारा मुझे
प्रेम का पय पयोदों से झरने लगा।
ग्रीष्म के आतपों से तपी नित्य जो
तृप्ति को पा गयी मेरी मन भूमिका।।

इस कविता की पहली पंक्ति का रंगात्मक अनुवाद यहाँ है। जमीन में तिरछी धारियों से 'जब' नीचे से पहले अश्रु विन्दु से 'निकट' दूसरे अश्रु से 'ने' उपरी पलक से 'निहारा' भौंह से 'मुझे' का रंग प्रकट किया गया है।

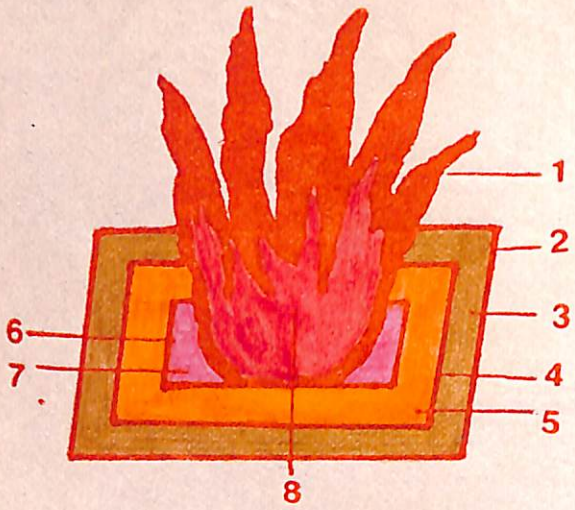

चित्र संख्या - 4

1 2 3 4 5 6 7
अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवं ऋत्विजं होतारं
8
रत्नधातमम् ॥ ऋ. वे.

1—8 तक शब्दों का वर्ण क्रम यहां दिया गया है।

चित्र संख्या - 5

जागो मोहन प्यारे जागो।
सा रे ग म प धा नि सा।

यह चित्र भैरव राग के बोलों का है। इसमें मसाल की बाहरी लौ से 'जागो' भीतर लौ से 'मोहन' मसाल के उपरी हिस्से से 'प्यारे' जो नारंगी रंग का है तथा नीचे के हिस्से से पुनः जागो का रंग प्रकट किया गया है।

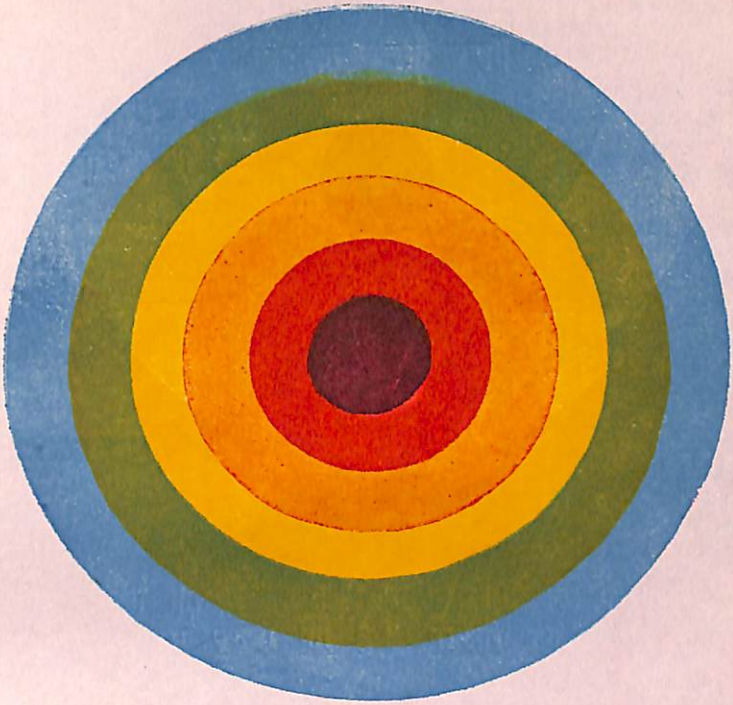

चित्र संख्या - 6

यहाँ हरे रंग का आभावृत उत्तम पुरुषों का है। पीले रंग का आभावृत मध्यम पुरुषों का है। नारंगी रंग का आभावृत अधम पुरुषों का है।

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	पुस्तक का नाम	लेखक/व्याख्याकार
1	ऋग्वेद	सायण, दयानन्द, जयदेव भाष्य
2	यजुर्वेद	,,
3	सामवेद	,,
4	अथर्व वेद	,,
5	गोपथ ब्राह्मण	,,
6	शतपथ ब्राह्मण	,,
7	बृहदारण्यक उपनिषद	,,
8	छान्दोग्य उपनिषद	शंकर भाष्य
9	एतरेय उपनिषद	,,
10	कठोपनिषद	,,
11	माण्डूक्योपनिषद	,,
12	मुण्डकोपनिषद	,,
13	केनोपनिषद	,,
14	नारायणोपनिषद	,,
15	ईशावास्योपनिषद	,,
16	श्वेताश्वतरोपनिषद	,,
17	प्रश्नोपनिषद	,,
18	तैत्तिरीयोपनिषद	,,
19	कैवल्योपनिषद	,,
20	बज्र सूचिकोपनिषद	,,
21	नारायण अथर्वशिरोपनिषद	,,
22	जाबालोपनिषद	,,

क्रम संख्या	पुस्तक का नाम	लेखक/व्याख्याकार
23	गर्भोपनिषद	,,
24	बृहज्जाबालोपनिषद	,,
25	शिक्षोपनिषद	,,
26	मुक्ति उपनिषद	,,
27	नादविन्दु उपनिषद	,,
28	राम पूर्व एवं उत्तर तापिनि उपनिषद	,,
29	कौषितकिब्राह्मणोपनिषद	,,
30	अत्रि स्मृति	म. अत्रि
31	विष्णु स्मृति	म. विष्णु
32	हारीत स्मृति	म. हारीत
33	वसिष्ठ स्मृति	म. वसिष्ठ
34	शातातप स्मृति	म. शातातप
35	गौतम स्मृति	म. गौतम
36	शंख स्मृति	म. शंख
37	दक्ष स्मृति	म. दक्ष
38	लिखित स्मृति	म. लिखित
39	व्यास स्मृति	म. व्यास
40	पाराशर स्मृति	म. पाराशर
41	कात्यायन स्मृति	म. कात्यायन
42	संवर्त स्मृति	संवर्त
43	आपस्तम्ब स्मृति	म. आपस्तम्ब
44	यम स्मृति	म. यम
45	अंगिरा स्मृति	म. अंगिरा
46	औशन स्मृति	म. उशना
47	बृहस्पति स्मृति	म. बृहस्पति

क्रम संख्या	पुस्तक का नाम	लेखक/व्याख्याकार
48	मनुस्मृति	म. मनु
49	याज्ञवल्क्य स्मृति	म. याज्ञवल्क्य
50	मीमांसा दर्शन	म. जैमिनी
51	वैशेषिक दर्शन	म. कणाद
52	योगदर्शन	म. पतंजलि
53	न्याय दर्शन	म. गौतस
54	सांख्य दर्शन	म. कपिल
55	योग वाशिष्ठ	महर्षि बाल्मीकि
56	गृह्य सूत्र	
57	अष्टाध्यायी सूत्रपाठ	महर्षि पाणिनि
58	जैमिनी सूत्र	म. जैमिनी
59	योग रहस्यम्	म. पतंजलि
60	वेदांग प्रकाश	
61	ब्रह्म सूत्र	म. व्यास
62	श्रीमद भगवत गीता	भगवान कृष्ण
63	सांख्य कारिका	,, कृष्ण
64	निरुक्त	म. यास्क
65	पाणनीय शिक्षा	म. पाणिनि
66	याज्ञवल्क्य शिक्षा	महर्षि याज्ञवल्क्य
67	विवेक चूड़ामणि	म. शंकराचार्य
68	हठयोग प्रदीपिका	योगीन्द्र स्वात्माराम
69	गरुड़ पुराण	महर्षि व्यास
70	ब्रह्म पुराण	,,
71	नारद पुराण	,,
72	ब्रह्माण्ड पुराण	,,
73	लिंग पुराण	,,

क्रम संख्या	पुस्तक का नाम	लेखक/व्याख्याकार
74	आदि पुराण	महर्षि व्यास
75	साम्ब पुराण	,,
76	विष्णु पुराण	,,
77	मत्स्य पुराण	,,
78	अग्नि पुराण	,,
79	आत्म पुराण	,,
80	भविष्य पुराण	,,
81	पद्म पुराण	,,
82	वामन पुराण	,,
83	कल्कि पुराण	,,
84	शिव पुराण	,,
85	वायु पुराण	,,
86	सौर पुराण	,,
87	भगवान पुराण	,,
88	नेमी पुराण	,,
89	जैमिनी पुराण	,,
90	कूर्म पुराण	,,
91	बृहज्जातकम्	पं. महीधर
92	ताजिक नीलकण्ठी	पं. महीधर
93	मुहूर्त चिन्तामणि	पं. दैवज्ञ राम
94	शिव स्वरोदय	पं. मिहिर चन्द
95	रमल रहस्य	श्री भव भंजन शर्मा
96	ग्रह लाघव	—
97	मान सागरी	पं बंशीधर
98	लगुपाराशरी	भाष्कराचार्य
99	सूर्य सिद्धान्त	श्री बलदेव प्रसाद मिश्र

क्रम संख्या	पुस्तक का नाम	लेखक/व्याख्याकार
100	अंक विद्या	गणेश कुमार ओझा
101	वाराही	
102	पद्मकोष	श्री वसति राम
103	नरपति जय चर्या	श्री गणेशदत्त पाठक
104	बृहत संहिता	आ. वाराह मिहिर
105	ज्योतिष में स्वर विज्ञान	श्री केदार दत्त जोशी
106	गायत्री महाविज्ञान	श्री राम शर्मा आचार्य
107	वैदिक शब्द कोश	श्री सूर्यकान्त
108	संस्कृत अंग्रेजी कोश	श्री वामन शिवराम आप्टे
109	भार्गव हिन्दी अंग्रेजी कोश	
110	क्यों	पं माधवाचार्य
111	संगीत समय सार	आ. पार्श्वदेव
112	कर्मज भव व्याधि दैवी चिकित्सा	पं केशवदेव शास्त्री
113	Tibetan Medicine	Sh. Bhagwan Dass
114	चरक संहिता	म. चरक
115	सुश्रुत संहिता	म. धन्वन्तरि
116	आर्यभट्टीय ज्योतिष शास्त्र	परमेश्वराचार्य
117	योगिनी तंत्र	श्री महादेव
118	उड्डीश तंत्र	श्री श्याम सुन्दर लाल त्रिपाठी
119	काली तंत्र	श्री सतीश चन्द्र
120	तंत्र सार संग्रह	श्री एम. दुरई स्वामी
121	तंत्र सिद्धान्त और साधना	पं देवदत्त शास्त्री

क्रम संख्या	पुस्तक का नाम	लेखक/व्याख्याकार
122	तांत्रिक साहित्य	प गोपीनाथ कविराज
123	वसिष्ठ संहिता	म. वसिष्ठ
124	होरा सार	श्री वी. सुब्रमण्यम
125	चमत्कार चिन्तामणि	महानारायण
126	कुरान	—
127	बाइबल	—
128	Introduction of Martinus cosmology.	Erik Garner Larson
129	विज्ञान सम्बन्धी पत्रिकायें व लेख	
130	विभिन्न लिपियाँ	

—●—

हमारे आगामी प्रकाशन

लेखक—किशोर चन्द्र चौबे

1. Reading of Harappan Script in Cosmic Way
2. आयुर्वेद में केन्सर और एड्स की चिकित्सा
3. वसन्ती—काव्य संग्रह
4. जननी जन्म भूमि—खण्ड काव्य
5, शब्दों की ध्वनियों के रंगों का शब्द कोश
6. Cosmic Astrology and Tantra

ऐरावत प्रकाशन

230/9C, मण्डावली फाजलपुर, रेलवे कॉलौनी, दिल्ली 110092